_ *डीएलएडप्रथम वर्ष प्रश्नपत्र–4 (स्वयं की पहचान)*

इकाई 1-स्वयं की क्षमता की खोज

0.1 इकाई की प्रस्तावना
0.2 इकाई के लिए अध्ययन सामग्री

0.1इकाई की प्रस्तावना

स्वतंत्रता पश्चात से ही भारत में शिक्षा को सब तक पहुंचाने और साथ ही इसकी गुणवत्ता को बेहतर करने के प्रति चिंताएं जतायी जाती रही हैं। हम अपने शैक्षिक जीवन को कैसे बेहतर बना सकते हैं, इसके लिए आलोचनाओं को आमंत्रित किया जाता रहा है। एक के बाद एक आए कई आयोगों और सुधी शिक्षाविदों द्वारा यह महसूस किया जाता रहा है कि शिक्षा के क्षेत्र में देश अपनी योग्यता का पूरा उपयोग नहीं कर पा रहा है और हम अब भी खास तौर पर प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में कई देशों से पिछड़े हुए हैं।

भारत के शैक्षिक जगत की बहुतेरी आलोचनाओं में से एक यह रही है कि शिक्षा तंत्र शिक्षकों की स्वतंत्र रूप से सोचने की क्षमता में भरोसा नहीं रखता और वहीं शिक्षकगण भी इस मामले में छात्रों पर भरोसा नहीं करते। अध्यापन की विधियों में भी छात्रों की स्वायत्तता, रचनात्मकता और नवाचारों की अपेक्षित जगह नहीं बन पाती है। इसी से जुड़ा हुआ यह विचार भी है कि हमारे शिक्षा जगत को जितना समतावादी होना चाहिए वह नहीं है।

अध्यापक शिक्षा की नई पाठ्यचर्या ऐसा शिक्षक बनाने का आह्वान करती है, जो विचारशील और रचनाशील हो। स्वयं की पहचान नामक यह विषय विचारशील शिक्षक की निर्मिति को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इस पाठ्यक्रम का लक्ष्य छात्राध्यापक को स्वयं को एक बेहतर इंसान और शिक्षक के रूप मेंविकसित करने के कौशल को जानने एवं समझने के अवसर प्राप्त कराना है।इस पाठ्यक्रम की पहली इकाई इस बात पर जोर देती है कि शिक्षक अपनी क्षमताओं, कमजोरियों और विकास की संभावनाओं और उसके तरीकों को कैसे जान–समझ सकें। अध्यापक शिक्षार्थी इस इकाई के अध्ययन के जरिए अपने आत्मविकास के प्रति सचेत हो सकेंगे और इस दिशा में ठोस कदम भी उठा पाए

0.2 इकाई के लिए अध्ययन सामग्री–

इस इकाई में आठ उप–इकाइयां हैं। हर उप–इकाई को एक अध्याय का नाम दिया गया है। इस तरह इस इकाई में कुल आठ अध्याय हैं। आठों अध्यायों के पाठों को इस तरह बनाया गया है कि छात्राध्यापक अवधारणाओं और मान्यताओं के बारे में खुद की समझ का निर्माण कर सकें। इस दृष्टि से कोशिश की गई है कि छात्राध्यापकों का परिचय विविध प्रकार की सामग्री से हो सके, ताकि वे तुलनात्मक और

आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए अपनी मौलिक सोच विकसित करने की ओर प्रवृत हो सकें। हर अध्याय में कम से कम एक ऐसी सामग्री दी गई है, जो परिचयात्मक है, जो विषय और अवधारणाओं से परिचित कराती है। साथ ही विभिन्न विचारकों और शिक्षाविदों की इस विषय पर मौजूद सामग्रियां भी ली गईं हैं।

चूंकि इस विषय के शिक्षण के लिए कार्यशाला पद्धति अपनायी जानी है, इसलिए हरेक अध्याय में कुछ गतिविधियां भी दी गई हैं। मगर इनके आधार पर शिक्षक व छात्र मिलकर और गतिविधियां भी बना सकते हैं। कक्षा में पारंपरिक अध्यापन की व्याख्यान शैली की जगह कार्यशाला शैली को अपनाया जाएगा तो संवाद के जरिए इस सामग्री का ज्यादा बेहतर उपयोग हो सकेगा। कार्यशालाओं में अतिथि वक्ताओं या सहजकर्ताओं को भी बुलाया जा सकता है।

इस विषय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कई तरह की नवाचारी पद्धतियाँ, तकनीक, रणनीति का उपयोग करने की आवश्यकता होगी। इन कार्यशालाओं में छात्राध्यापकों के मध्य अंतर्क्रिया, विभिन्न मुद्दों पर चर्चा, एकल या समूह रूप में प्रस्तुतीकरण। वादविवाद, रोलप्ले, केस स्टडी एवं और भी अनेक प्रकार की उपयुक्त गतिविधियों को संस्थान के विशेषज्ञों द्वारा शामिल किया जा सकता है।

उपइकाइयों या अध्यायों में अध्ययन सामग्रियों को इस ढंग से पिरोया गया है कि छात्राध्यापकों के लिए विशेष प्रकार की गतिविधियों की रूपरेखा तैयार करवाई जा सके। छात्र समसामयिक विषयों को लेकर समूह में या व्यक्तिगत रूप से सुविधादाता के साथ चर्चा करके अपनी समझ बनाएगें। इस विषय के माध्यम से छात्रध्यापकों को यहसुअवसर दिया जाएगा कि वे बाह्य जगत को समझ सकें और अपनी संवेदनाओं के आधार पर उससे जुड़सकें।

यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षार्थियों को स्वयं के जीवन और उनसे जुड़े मुद्दों के भीतर झांकनेऔर व्यक्त करने का मौका दिया जाएगा। छात्राध्यापकों को प्रोत्साहित किया जाए कि वे नवीन एवंसमसामयिक मुद्दों पर नवीनता एवं गंभीरता से विचार कर सकें और अपनी कल्पनाओं, सृजनात्मकता केजरिए स्वयं के लिए उसका उपयोग कर सकें।

डीएलएड प्रथम वर्ष, पेपर 4, इकाई 1-स्वयं की क्षमता की खोज

अध्याय–1: आत्मावलोकन अभ्यास द्वारा स्वयं की क्षमताओं एवं कमजोरियों/सीमाओं को समझना

1.01 परिचय

1.02 उद्देश्य

1.1 अध्ययन सामग्री 1: आत्म क्या है या मैं कौन हूं

1.2 अध्ययन सामग्री–2:शिक्षक के लिए क्यों जरूरी है स्वयं को पहचानना- जे. कृष्णमूर्ति

1.3 अध्ययन सामग्री–3:आत्मावलोकन

1.4 अध्ययन सामग्री–4:स्वयं की क्षमताओं एवं कमजोरियों को समझना

1.01परिचय:

स्वयं से अवगत होना एक सचेतन आन्तरिक प्रयास है जिसके लिये कोई भी व्यक्ति प्रयास कर सकता है। इसके द्वारा वह अपनी शक्तियों क्षमताओं, कमजोरियों आदि को समझ सकता है। वह अपनी बाह्य क्रियाओं के प्रति भी सजग, सतर्क, जागृत, विवेकशील हो सकता है।

यूं तो आत्मावलोकन द्वारा स्वयं की पहचान करना किसी के लिए भी अच्छा है, मगर यह शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों के लिए बहुत जरूरी हो जाता है। शिक्षा की प्रक्रिया शिक्षार्थी के भीतर निश्चित ही कुछ बदलाव लाती है। वह पहले से ज्यादा कुछ जानता और समझता है। शिक्षा एक तरह से व्यक्तित्व और समाज के रूपांतरण की प्रक्रिया से ही जुड़ी हुई है, भले ही इसका स्पष्ट बोध शिक्षा से जुड़े लोगों में न हो। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आत्मावलोकन शिक्षा की प्रक्रिया में और शैक्षिक प्रक्रिया स्वयं की पहचान में क्या भूमिका निभा सकतत है।

सीखना ज्यादा सार्थक और प्रभावशाली तभी होता है जब सीखने वाला लगातार अपनी समीक्षा करने की इच्छा रखता हो और जायजा लेते हुए चलता हो। कक्षा का माहौल हो या सीखने–सिखाने की पद्धतियां या फिर मूल्यांकन की रणनीतियां, इन्हें इस तरीके से बनाया जाना चाहिए कि वे शिक्षार्थी को पहल करने के लिए प्रेरित करें और उसे धीरे–धीरे अपने सीखने के लिए स्वयं जिम्मेदार बनाएं। ऐसा करते हुए एक ही कक्षा में मौजूद शिक्षार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखना जरूरी है।

एक शिक्षक शिक्षार्थियों में सीखने और आत्मविकास का जज्बा तब तक पैदा नहीं कर सकता, जब तक कि वह स्वयं इन बातों को दिली तौर पर न समझता हो और इन्हें अमल में न लाता हो। एक शिक्षक जो शिक्षार्थियों के आत्म–विकास के काम में सहायक बनना चाहता है, अपने आप से ये सवाल पूछ सकता है कि— क्या वह एक स्पष्ट विश्वास से भरी आत्म–छवि रखता है; उसके पास किसी प्रक्रिया में डटे रहने का माद्दा कितना है; उसमें सीखने की आत्म–प्रेरणा कितनी है; क्या उसमें आलोचनात्मक तथा रचनात्मक तरीके से सोच–विचार की क्षमता है; क्या वह दक्षतापूर्वक किसी समस्या का समाधान कर सकता है, आत्मानुशासन तथा उसकी ध्यान केन्द्रित रखने की सामर्थ्य कितनी है। स्वयं की क्षमता की खोज से जुड़े इस तरह के और भी बहुत से सवाल हो सकते हैं।

यह अध्याय इन्हीं सवालों का जवाब देने की कोशिश करता है। इसमें शिक्षक व शिक्षार्थी के आत्मविकास के लिए अध्ययन सामग्रियां और गतिविधियां दी गई हैं, जिनके जरिए शैक्षिक संदर्भ में आत्म–विकास के रास्ते पर आगे बढ़ा जा सकता है।

1.02 उद्देश्य :–

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जानेगें कि :–

- स्व या आत्म आत्मबोध, स्वयं की पहचान जैसी अवधारणाओं का अर्थ जान सकेंगे।
- आत्मावलोकन के उद्देश्य और महत्त्व को समझ सकेंगे।
- आत्मबोध क्या है। इसको समझने के रास्ते या प्रक्रियाएं क्या हैं
- आत्मावलोकन क्या है और इसके लिए क्या किया जाना चाहिए
- आत्मावलोकन शैक्षिक प्रक्रिया के लिए क्यों महत्त्वपूर्ण हैं, इसे अपनाने से कोई एक बेहतर शिक्षक किस तरह बन सकता है
- स्वयं की क्षमताओं और कमजोरियों को वस्तुगत ढंग से जानने के तरीके क्या हैं और इन्हें कैसे अमल में लाया जाए
- छात्रों को आत्मावलोकन के लिए और खुद के आत्म.विकास के लिए प्रेरित कैसे किया जाए

1.1 अध्ययन सामग्री– 1: आत्म क्या है या मैं कौन हूं

'स्व' या आत्म का अर्थ–किसी भी मनुष्य का अपना बोध होता है। वह अपने अतीत और भविष्य को समझता है और दूसरों लोगों, मित्रों, सहकर्मियों, रिश्तेदारों, शत्रुओं और अतिथियों को भी जानता है। उसे अपने जीवन और अपनी और अपनी अंतिम मृत्यु का भी बोध है। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि उसे अपनी क्षमताओं व कमजोरियों का सही–सही बोध हो ही। ध्यान से देखें तो हम पाते हैं कि हर व्यक्ति अपने जीवन की निश्चित पहचान, उद्देश्य और अर्थ को प्राप्त करने के लिए लगातार कोशिश करता रहता है।

'स्व' या आत्म की अवधारणा का अर्थ है स्वयं के बारे में ज्ञान हासिल करने की योग्यता और इसे अपनी भाषा में और अपनी शैली में हासिल करना। भले ही इसके लिए कोई व्यक्ति दूसरों के द्वारा सुझाए गए रास्तों का प्रयोग कर सकता है।

'स्व' का मतलब होता है स्वयं की पहचान, स्वयं का व्यक्तित्व अर्थात् जो कुछ कोई व्यक्ति है। मोटे रूप में 'स्व' को ऐसे कथन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जैसे – ''मैं इस तरह का व्यक्ति हूं'' और ''ये मेरी खूबियां और कमजोरियाँ हैं ... ।'' इस तरह 'स्व' किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है। इसके तहत शारीरिक 'स्व' और उसकी पहचान का भाव शामिल होता है। स्व व्यक्तित्व का केन्द्रीय स्थल है। यह व्यक्तित्व की प्रक्रिया को दिशा देता है जिसके जरिए अचेतनमन के उपयोगी और रचनात्मक पक्ष को चेतन बनाया जाता है और उसे एक सकारात्मक प्रक्रिया की ओर ले जाया जाता है।

'स्व' की अवधारणा का सम्बन्ध आत्मविकास से है। बहुत छोटा शिशु ''मैं'' और ''तुम'' में भेद नहीं कर सकता। बच्चे का दूसरों से भिन्न होने का बढ़ता बोध उस समय होता है जब बच्चा ''मैं'', ''मुझे'' ''तुम'' आदि सर्वनामों का प्रयोग करना आरंभ करता है। इस बढ़ती हुई पृथकता का एक रूप निम्नलिखित स्थिति में प्रतिबिंबित होता है।

बच्चों में चेतना और आत्म का विकास–महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि बच्चों में चेतना और आत्म का विकास किस तरह होता है। यह एक ऐसी क्रमिक प्रक्रिया होती है, जिसमें बच्चे धीरे–धीरे खुद को दूसरों की भूमिका में रखना सीखते हैं और अपनी गतिविधियों को दूसरों के नजरिये से देखने की समझ हासिल करते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि बच्चों में आत्मबोध का विकास दरअसल एक सामाजिक प्रक्रिया है और यह अनिवार्य रूप से समाजीकरण की प्रक्रिया में किसी बच्चे की व्यक्तिगत भागीदारी से जुड़ी हुई है।

मनुष्यों के बीच संप्रेषण केवल तभी संभव होता है जब कोई प्रतीक एक व्यक्ति के अंदर वैसे ही भाव जाग्रत करे जैसे भाव दूसरे व्यक्ति के भीतर जाग्रत करता है। मगर लोगों द्वारा भाषा के बरताव में किसी जगह जितनी विभिन्नता हो सकती है उतनी ही आत्मबोध के निर्माण में होती है।

नन्हें शिशु अर्थपूर्ण प्रतीकों का इस्तेमाल करना नहीं जानते लेकिन जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं वैसे–वैसे खेल के जरिये उन्हें यह समझ आने लगता है कि दूसरों की भूमिकाओं को कैसे अपनाया जाए। उदाहरण के लिए बच्चा कभी मां की भूमिका करता है, कभी अध्यापक की तो कभी पुलिस वाले की भूमिका में आ जाता है।

खेल के दौरान अदा की वाली भूमिकाओं से गुजरते हुए विकासमान बच्चों में खुद को उन लोगों की स्थिति में रखकर देखने की समझ पैदा होती है, जिन्हें वे अपने लिए महत्त्वपूर्ण समझते हैं। इस तरह वे व्यावहारिक रूप से विभिन्न सामाजिक भूमिकाओं और अपने आत्मबोध के बीच भी फर्क करने लगते हैं। परिपक्व होने पर बच्चा न केवल इन भूमिकाओं को निभाना सीख जाता है बल्कि वह इन भूमिकाओं की रूपरेखा अपनी कल्पना में भी बनाने लगता है।

'स्व' या आत्म हमेशा प्रथम पुरूष के रूप में अभिव्यक्ति पाता है– मैं के रूप में। जन्म से लेकर अब तक, हमारा शरीर और हमारे विचार बदलते रहे हैं, परन्तु ''हम'' वही होते हैं। अतः मैं शरीर और मन से भिन्न है। जब आप सो रहे होते हो, तो संभवतः आपका मन अर्धचेतन अवस्था में होता है। अगली सुबह सो कर उठने के पश्चात् आप कह सकते होः ''यद्यपि मैं सोया जरूर था परन्तु ठीक से नहीं सो पाया''। कुछ अवस्थाओं में आप कह सकते हो कि: जब किसी ने खेल के मैदान में मुझे मारा, तो मुझे अत्यधिक दर्द हुआ।'' मुख्य प्रश्न यहाँ पर यह है कि इस दर्द को किसने अनुभव किया। यही बात कि कुछ अनुभव हुआ, का अर्थ है कि किसी को अनुभव हुआ। यह ''मैं'' ही आत्म या स्व है।

सामाजिक प्रभाव और आत्म का निर्माण–

हमारा व्यक्तित्व हमारे पूर्वजों, माता–पिता से गुण–अवगुण प्राप्त कर तथा जिस परिवेश में हम रह रहे हैं, इन दोनों से मिलकर बनता है। ये दोनों कारक हमारे जीवन को बहुत प्रभावित करते हैं। 'स्वयं' की समझ विकसित होने के साथ ही हम अपनी पसन्द, नापसन्द, राय, सहमति, सहमति आदि को व्यकत करना शुरू कर देते हैं। इसी 'स्वयं' के आधार पर हम स्वयं के बारे में तथा दूसरों के बारे में भी समझ सकते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में हम अपने आपको तथा आस–पास के वातावरण को तीन संदर्भों में समझते हैं –

- मैं वास्तव में कैसा हूँ? दूसरे लोग वास्तव में कैसे हैं?
- मैं कैसा हो सकता हूँ? दूसरे लोग कैसे हो सकते हैं?
- मुझे कैसा होना चाहिए? दूसरे लोगों को कैसा होना चाहिए?

हम आस–पास के लोगों के साथ निरन्तर संवाद करते हैं और अपने अनुभव के आधार पर अपनी पहचान बनाने लग जाते हैं। यह पहचान लगातार बदलती रहती है। विचारक हरबर्ट मीड के अनुसार पूरी तरह परिपक्व व्यक्ति केवल यह ध्यान नहीं करता कि उसके प्रति व एक–दूसरे के प्रति अन्य व्यक्तियों का रवैया कैसा है, बल्कि वह साझी सामाजिक गतिविधि के औचित्य व उनके बारे में बाकी लोगों के रवैये पर भी विचार करने लगता है। वह जीवन की कठिनाइयों और बाधाओं को समझने लगता है। इस तरह एक परिपक्व आत्म तभी अस्तित्व में आता है जब व्यक्ति बाकी लोगों के व्यवहारों और उनके कारणों को समझने में समर्थ होता है।

व्यक्ति के रूप में हम किसी खास जगह, किसी खास राजनीतिक राष्ट्र में जन्म लेते हैं। हमें जन्म से ही कई सामाजिक पहचानें मिल जाती हैं, जिनमें भाषायी पहचान भी शामिल है। हम खास सामाजिक और राजनीतिक संबंधों का हिस्सा होते हैं, जिनमें कई बार टकराव भी होता है और जो बदलते भी रहते हैं। मौटे तौर पर कोई व्यक्ति उन सामाजिक संरचनाओं में पैदा होता हैं, जिनके निर्माण में उसका कोई हाथ नही होता। वह एक ऐसी सांस्थानिक और सामाजिक व्यवस्था में बड़ा होता और जीता है जिसे वह खुद नहीं गढ़ता। उसे कानून, भाषा, रीति–रिवाजों और आर्थिक स्थितियों की बाध्यताओं के साथ जिंदगी जीनी होती है। ये सभी बातें किसी व्यक्ति के स्व या आत्म का निर्माण करती हैं परंतु व्यक्ति इन परिस्थितियों का चिरस्थायी गुलाम भी नहीं होता। मौका मिलने पर और चाहने पर वह इन परिस्थितियों से बाहर निकल कि अपने चुनाव कर सकता है और यहां तक कि सामाजिक परिस्थतियों को बदलने में योगदान भी कर सकता है।

इस तरह किसी व्यक्ति के आत्म के बनने में उसके पर्यावरण, और संस्कृति की महती भूमिका होती है। इसलिए खुद को तब तक नहीं जाना जा सकता जब तक कि खुद पर पड़ने वाले सामाजिक प्रभावों का भी आलोचनात्मक विवेचन न किया जाए और अपने रास्ते का चुनाव नहीं किया जाए। मनुष्य की खासियत यह

है कि वह अपने आत्म पर चिंतन कर सकता है। व्यक्तिगत आत्म केवल इसी अर्थ में व्यक्तिगत होता है कि वह दूसरों से जुड़ा होता है। वह दूसरों के रवैये को अपनी कल्पना में आत्मसात करने की योग्यता के जरिये ही अपने आत्म को चिंतन का विषय बना सकता किसी के व्यक्तित्व का मूल बेशक सामाजिकता में निहित होता हो परंतु सामाजिक प्रक्रिया में प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से योगदान करता है। हरेक व्यक्ति का आत्म अलग होता है।

बोध प्रश्न

1. 'स्व' का अर्थ क्या है?
2. 'स्व' हमेशा प्रथम पुरुष के रुप में ही क्यों अभिव्यक्त होता है?
3. अपने अनुभव के आधार पर हम कैसे अपनी पहचान बनाने लगते है?
4. बच्चे अपनी चेतना का विकास किस प्रकार करते है? विद्यालय के संदर्भ में समझाइए?
5. हरेक व्यक्ति का 'आत्म' अलग क्यों होता है?

1.2अध्ययन सामग्री–2:- शिक्षक के लिए क्यों जरूरी है स्वयं कोपहचानना- जे. कृष्णमूर्ति

शिक्षक को शिक्षित करना: सही शिक्षा शिक्षक से ही शुरू होती है। शिक्षक को स्वयं को समझकर विचार के बने–बनाए ढाँचों से मुक्त होना चाहिए, क्योंकि जो कुछ वह स्वयं होता है वही वह दूसरों को देता है। यदि वह स्वयं उचित रूप से शिक्षित नहीं हुआ है तो वह उस यांत्रिकज्ञान के अतिरिक्त, जिसके आधार पर स्वयं उसका निर्माण हुआ हे, दूसरों को क्या दे सकता है? अतः समस्या बच्चे नहीं बल्कि माता–पिता और शिक्षक हैं, समस्या शिक्षक को शिक्षित करने की है।

हम शिक्षक ही यदि स्वयं को गहराई से नहीं समझते तथा बच्चे के साथ अपने रिश्ते को ही मौलिक रूप से नहीं समझते, और उसे केवल जानकारियों से भरने एवं परीक्षाएं पास करवाने में लगे रहते हैं,तो हम कैसे एक नए ढंग की शिक्षा ला सकेंगे? विद्यार्थी को मार्गदर्शन की, सहायता की जरूरत होती है, लेकिन अगर मार्गदर्शकया सहायक स्वयं ही भ्रांत हो, संकीर्ण हो, राष्ट्रवादी तथा मतांध हो तो स्वाभाविक है कि उसका शिष्य भी वैसा ही होगा। उस अवस्था में शिक्षा और भी अधिक भ्रांति एवं कलह का कारण बनेगी।

यदि हम इस बात की सत्यता को देख लें तो हमें यह अहसास होगा कि पहले खुद को उचित प्रकार से शिक्षित करना कितना जरूरी है। सबसे पहले स्वयं को नए सिरे से शिक्षित करने की चिंता करना बच्चे के भविष्य के कल्याण की ओर उसकी सुरक्षा की चिंता से कहीं अधिक जरूरी है।

शिक्षक को शिक्षित करना– अर्थात उसे स्वयं को समझने के लिए तैयार करना–सबसे कठिन काम है, क्योंकि हममें से ज्यादातर व्यक्ति किसी विचार–प्रणाली में या कर्म के ढांचे में पहले ही ढाले जा चुके हैं, हमने पहले ही अपने को किसी विचारधारा या किसी धर्म या आचार– व्यवहार के किसी विशेष मापदंड के प्रतिसमर्पित कर दिया है। यही कारण है कि हम बच्चे को सिखाते हैं कि वह क्या सोचे, न कि वह कैसे सोचे।

माता–पिता और अध्यापक: इसके अलावा माता–पिता और अध्यापक ज्यादातर अपने खुद के झगड़ों और परेशानियों में व्यस्त रहते हैं। धनी हों या निर्धन, अधिकांश माता–पिता अपनी व्यक्तिगत चिंताओं और मुसीबतों में खोए रहते हैं। उन्हें वर्तमान सामाजिक एवं नैतिक पतन की कोई गंभीर चिंता नहीं होती, उनकी केवल यह चिंता होती है कि उनके बच्चे इस काबिल हो जाएं कि संसार में सफलतापूर्वक जी सकें। वे अपने बच्चों के भविष्य के बारे में चिंतित होते हैं, उनकी दिलचस्पी केवल इसमें होती है कि उनके बच्चों को ऐसी शिक्षा मिल जाए जिससे किवे कोई सुरक्षित हैसियत पा जाएं औरउनकी ठीक–ठाक ढंग से शादी हो जाए।

आम धारणा के विपरीत अधिकांश माता–पिता अपने बच्चों से प्रेम नहीं करते, हालांकि उनसे प्रेम करने की बात वे जरूर कहते हैं। यदि माता–पिता वास्तव में अपने बच्चों से प्रेम करते तो संपूर्ण के विरोध

में केवल परिवार और राष्ट्र पर बल नहीं दिया जाता। ऐसा करना मनुष्यों के बीच में सामाजिक और जातीय विभाजन पैदा करता है तथा युद्ध और भूख की पीड़ा भी पैदा करता है। यह सचमुच बड़ा आश्चर्यजनक है कि वकील या डॉक्टर होने के लिए व्यक्तियों को बड़े कठोर प्रशिक्षण से गुजरना होता है जबकि माता–पिता बनने जैसे अति महत्वपूर्ण कार्य के लिए उन्हें किसी प्रकार के शिक्षण की जरूरत नहीं पड़ती।

अधिकतर यही होता है कि परिवार अपनी अलग प्रवृत्तियों के कारण अलगाव की सामान्य प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता है और इस प्रकार समाज के अधःपतन का कारण बनता है। जब प्रेम और बोध होता है तभी अलगाव की दीवारें टूटती हैं और तभी परिवार एक बंद घेरा नहीं रह जाता, तब वह न तो एक जेल रहता है और न शरणस्थल, उस हालत में माता–पिता की केवल अपने बच्चों से ही नहीं बल्कि अपने पड़ोसियों से भी एकलयता रहती है।

स्वयं अपनी समस्याओं में व्यस्त रहने के कारण अनेक माता–पिता अपने बच्चों के कल्याण का दायित्व शिक्षक के सुपुर्द कर देते हैं, और तब यह जरूरी हो जाता है कि शिक्षक माता–पिता को शिक्षित करने में सहायता करें।

शिक्षक को उनसे बात करनी चाहिए और उन्हें समझाना चाहिए कि विश्व की अस्त–व्यस्त हालत स्वयं अपनी व्यक्तिगत भ्रांतियों का प्रतिबिंब मात्र है। उसे यह बताना चाहिए कि वैज्ञानिक प्रगति अपने आप ही प्रचलित मूल्यों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं पैदा करेगी, कि तकनीकी प्रशिक्षण, जिसे आज शिक्षा कहा जाता है, मनुष्य को मुक्ति नहीं दे सकता और न ही उसे और अधिक सुखी बनासकता है, और यह भी बताना चाहिए कि वर्तमान परिवेश को स्वीकार करने के लिए बच्चे को संस्कारबद्ध करना प्रज्ञा के विकास के अनुकूल न होगा। शिक्षक को माता–पिता को यह बता देना चाहिए कि वह उनके बच्चे के लिए क्या करने का प्रयत्न कर रहा है तथा अपने कार्य को वह कैसे आरंभ कर रहा है। उसे माता–पिता के विश्वास को जगाना होगा, अज्ञानी जनसाधारण से व्यवहार करने वाले विशेषज्ञ का चोगा पहनकर नहीं, बल्कि बच्चे के स्वभाव, उसकी कठिनाईयों, प्रवृत्तियों आदि के विषय में उनसे बातचीत करके।

हर बच्चे को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में देखते हुए शिक्षक उनमें यदि वास्तविक रूचि लेता है तो माता–पिता को उस पर विश्वास होगा। इस प्रक्रिया में अध्यापक माता–पिता को तथा स्वयं अपने को शिक्षित कर रहा है, वह माता–पिता से भी बदले में कुछ सीख रहा है। सम्यक शिक्षा एक पारस्परिक कार्य है जिसके लिए धैर्य, सहानुभूति तथा प्रेम की आवश्यकता होती है। एक प्रबुद्ध समाज में प्रबुद्ध अध्यापकों को इस समस्या पर विचार करना चाहिए कि बच्चों को कैसे विकसित किया जाए, और रूचि रखने वाले अध्यापकों तथा विचारवान माता–पिता को उन्हीं दिशाओं में छोटे स्तरों पर प्रयोग करने चाहिए।

क्या कभी माता–पिता ने अपने से यह प्रश्न किया है कि उन्हें बच्चे क्यों चाहिए? क्या वे अपने नाम को बनाए रखने के लिए, अपनी संपत्ति सुरक्षित रखने के लिए बच्चे चाहते हैं? क्या वे स्वयं अपने आनंद के लिए, अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बच्चे चाहते हैं? यदि ऐसा है तो बच्चे अपने माता–पिता की इच्छाओं और आशंकाओं के प्रक्षेपण मात्र हैं।

क्या माता–पिता यह दावा कर सकते हैं कि वे अपने बच्चों से प्रेम करते हैं, जबकि दोषपूर्ण शिक्षा देकर वे उनमें द्वेष, बैर–भाव तथा महत्वाकांक्षा का पोषण कर रहे हैं? क्या यह प्रेम है जो ऐसे राष्ट्रीय और जातीय संघर्ष उत्प्रेरित करता है जिनसे युद्ध, विनाश और अपार कष्ट पैदा होते हैं, जो धर्मो और विचारधाराओं के नाम पर मनुष्य को मनुष्य के विरोध में खड़ा कर देता है?

बच्चे को न केवल गलत प्रकार की शिक्षा के अधीन करके बल्कि स्वयं अपनी जीवन–पद्धति से भी अनेक माता–पिता उसे द्वंद्व और दुख के मार्गों पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं, और वह जब बड़ा होता है, कष्ट उठाता है, वे उसके लिए प्रार्थना करते हैं या तो फिरउसके बर्ताव को सही ठहराने के लिए कारण ढूंढते हैं। अपने बच्चों के लिए माता–पिता का कष्ट उठाना एक प्रकार की अधिकार–वृत्ति वाली आत्म–दया है, जिसका अस्तित्व तभी होता है जब प्रेम नहीं होता।

जब तक हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे शक्तिशाली बने, ऊंचे और अच्छे पदों को प्राप्त करें, अधिकाधिक सफल हों, तब तक हमारे हृदय में प्रेम नहीं है, क्योंकि सफलता की पूजा द्वंद्व और कष्ट को प्रोत्साहन देती है। अपने बच्चों से प्रेम करने का अर्थ है कि उनके साथ पूर्णतया संवाद में होना, यह देखना कि उनको ऐसी शिक्षा मिल रही है या नहीं जो उनको संवेदनशील, प्रज्ञावान और समन्वित बनाने में सहायक हो।

बोध प्रश्न

1. शिक्षक को अपने स्वयं की पहचान क्यों करनी चाहिए?
2. क्या माता–पिता वास्तव में अपने बच्चों से प्रेम करते है? बच्चे के संदर्भ में माता–पिता के प्रेम का तात्पर्य क्या है?
3. शिक्षक और माता–पिता के संबंध कैसे हो कि बच्चों की शिक्षा सार्थक हो सके?
4. समाज में बैर–भाव, वैमनस्य, द्वेष और कलह की क्या वजह है?
5. शिक्षक को शिक्षित करना क्यों कठिन है?

1.3 अध्ययन सामग्री–3: -आत्मावलोकन

सामान्यतया हमसे अपना परिचय पूछने पर हम अपना नाम, कहॉ से आये, अपना पद, संस्था का नाम, अपनी रूचियॉ, शौक आदि सम्मिलित करते हुए देते है। परन्तु कोई यह पूछे की आपकी पहचान क्या है, तो हम सोचने लगते हैं कि क्या बताये, कोई क्रमबद्धता निश्चित नहीं कर पाते है, उलझन में पड़ जाते हैं तथा मनोभाव भी बदलते रहते है और भीतर अर्न्तव्दंद चलने लगता है, इसका उत्तरसंभवतः अपूर्ण तथा व्यक्तिशः भिन्न–भिन्न होगा।

इसका मूल आधार "आत्मावलोकन" है जो सभी आन्तरिक चलने वाली सचेतन प्रक्रिया है, इसमें चिन्तन, मनन निरंतर गहन होता चला जाता है, तथा नये–नये विचार उत्पन्न होते रहते हैं। हम अपने–आप में खरे जाते है, बाहरी प्रक्रियाओं से मुक्त हो जाते है अर्थात बाहरी बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं तथा अंतर्मुखी हो जाते है। इस तरह हम "आत्मावलोकन" द्वारा मन की वास्तविक स्थिति समझने लगते हैं, उस समय हम अपनी क्षमताओं, दुर्बलताओं विचारों, आस्थाओं, कौशलों, संवेगों, अभियोजनाओं, विशेषताओं, शक्तियों आदि को असली रूप में जानने लगते हैं। आत्मावलोकन में हमारे भीतरी प्रयत्न ही काम के होते है– स्वचिन्तन, स्वविश्लेषण व स्वनिर्णय।

अपने अन्तर्मन में झांक कर यदि हम देखें तो हमें पता चलेगाकि हममें बहुत सी कमियॉ और अच्छाईयॉ हैं। इनके बोध से ही हम अपनी वास्तविकता जान सकते हैं। अपने व्यक्तित्व को पहचान सकते हैं, अर्थात् स्वयं को पहचान सकते हैं।

जीवन में दूसरों के साथ ही सामंजस्य बैठाने के लिए स्वयं को पहचानना अत्यन्त आवश्यक है। जन्म के साथ ही बच्चों के लिंग तथा शारीरिक रूप–रंग, स्वभाव तथा मानसिक क्षमताओं का कुछ हद तक निर्धारण हो जाता है। साथ ही व्यक्तित्व के विकास में दूसरे महतवपूर्ण कारकों जैसे– परिवार, विद्यालय, शिक्षक, संचार माध्यम, परिवार की सामाजिक व आर्थिक स्थिति आदि का भी महत्वपूर्ण योगदान होता हैं।

स्वयं की मजबूतियों और कमजोरियों को पहचानने में सक्षम होकर परिवार, विद्यालय और विभिन्न स्थानों पर अपनी पहचानों और भूमिकाओं को समझ पाना ही स्वयं की पहचान है।

विद्यालय में आपसे शायद कभी पूछा गया होगा कि–''बडे होकर आप क्या बनना चाहते हो?'' इस प्रश्न में ''क्या'' की बजाय ''कौन'' पर अधिक जोर दिया गया है। सवाल उठता है कि हम क्या बनना चाहते हैं, क्या इसके पहले हमें यह पता है कि हम क्या हैं। निम्मलिखित बातें अपने आप को समझने में हमारी सहायता कर सकती हैं।

- **अपनी शक्तियों को समझना** : आप में स्वाभाविक रूप से कौन–सी योग्यताएँ विद्यमान है और किनका पोषण व विकास करना चाहते हैं? शक्तियाँ जो आपमें विद्यमान हैं और जिन्हें आप पोषित तथा विकसित करना चाहते हो, आपकी निजी परिसम्पत्ति हैं। इनके

कारण आप जीवन में एक अलग स्थान रखते है जो दूसरों से भिन्न हैं। इनसे आपको अवगत होना चाहिए। इसमें आपकी सांवेगिक शक्तियाँ तथा प्रेम अभिव्यक्ति की योग्यता तथा गुण–दोष–विवेचन की योग्यता सम्मिलित है।

- **अपने मनोवेगों को जानना** : वह क्या है जिसकी आपको एक धुन रहती है वह क्या है जिससे आप उत्तेजित या उत्साहित हो जाते हो और उसे आपकी एकाग्रता की आवश्यकता है? वे कौन से क्रियाकलाप और लक्ष्य हैं जिनसे आप वास्तव में सजीव अनुभव करते हों? आप अपने जीवन का निर्माण उन मनोवेगों के इर्द–गिर्द नहीं कर सकते यदि आपने उन्हें सही रूप में पहचाना नहीं है। जब आप आन्तरिक समन्वय उत्पन्न करने का प्रयास कर रहे हों। यह सुनिश्चित करना कि आपके मनोवेग और आपके मूल्य और मानक एक दिशा में हैं, आपके लिए बहुत महत्वपूर्ण होगा।
- **अपने मूल्यों की जानकारी** : ये वे बातें हैं जो गहनतम स्तर पर आपके लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आपके निजी मूल्य और मानदंड (मानक) क्या हैं? आपकी प्राथमिकताएँ तथा विश्वास या आस्थाएँ क्या हैं? आप इन्हें इतना महत्व क्यों देते हैं? आप अपने निजी मानकों तथा नैतिक मूल्यों को किस स्तर की वचनबद्धता देना चाहते हैं? आप अपने वास्तविक आत्म के प्रति कितना सच्चा रहना चाहते हैं?
- **अपनी प्रवृत्तियों को पहचानना** : आपकी प्रवृतियाँ चाहे वे अच्छी हों या बुरी आपकी आदत बन जाती है। क्या आप अपनी सोच के आधार पर किन्हीं कार्यो को करना चाहोगे ? या आप चाहोगे कि कार्यो को टालते रहें या अत्यधिक प्रक्रिया करोगे? अपनी अभ्यसित प्रवृत्तियों को जानना, आपके लिए उन क्षेत्रों के विश्लेषण में सहायक हो सकता है जिनमें कुछ सुधार की आवश्यकता है। इससे आपको यह जानने में सहयता मिलेगी कि कौन–सी प्रवृत्तियाँ आपकी प्रबलताओं और सफलताओं में अत्यधिक योगदान देती हैं।
- **अपनी कमियों (परिसीमाओं) को स्वीकार करना** : यह समझ लें कि आप प्रत्येक प्रयास या क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ नहीं बन सकते। यह जान लेना अच्छा होगा कि इस समय कौन–से कौशल और क्रियाकलाप आपकी योग्यताओं से परे हैं। ऐसा जानते हुए आप ऐसे क्रियाकलाप का दायित्व किसी और को दे सकते हैं और अपनी ऊर्जा का प्रयोग वहाँ करेंगे, जहाँ सबसे प्रभावी हो सकता है। हम जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में अपनी योग्यताओं में सुधार ला सकते हैं अतः वर्तमान कमियों को स्थाई न समझें। अपने निजी मूल्यांकन में यथार्थवादी तथा व्यावहारिक बनें। अपने वास्तविक आत्म् को जानने में आपकी सत्यनिष्ठ (ईमानदारी) एक पूर्वापेक्षा है।
- **अपने लक्ष्य निधारित करना** : आप वास्तव में किस वस्तु को प्राप्त करना चाहते हो। आप किस प्रकार के व्यक्ति के रूप में विकसित होना चाहते हो? आपके लक्ष्य विशिष्ट, निर्धारणीय, प्राप्य तथा वास्तविक या यथार्थवादी होने चाहिए। जब बात लक्ष्य निर्धारण की होती है तो इसका मुख्य तत्व स्पष्टता है। स्पष्टता कार्य को प्रेरित करती है और स्पष्टता का अभाव, गड़बड, विभ्रम तथा निष्क्रियता की ओर ले जाता है।
- **अपनी दिशा स्थापित करना** : आपका वास्तविक आत्म् जीवन में किस और जाना चाहता है? एक बार जब आप अपने मूल्यों, शक्तियों, मनोवेगों, प्रवृत्तियों, सीमाओं तथा लक्ष्यों को समझ जाते हो, तो आपको एक गन्तव्य की आवश्यकता पड़ती है जिस ओर आप गमन करना चाहोगे। यही आपकी दिशा होगी। अपने गन्तव्य पर पहुँचने के बारे में चिंता न करें, क्योंकि जो महत्वपूर्ण है वह ''यात्रा'' है। अतः एक ऐसी दिशा को चुनें जो वास्तविक प्रसन्नता का निरूपण करती हो, और इस ओर आगे बढ़ों। तब देखोगे कि जीवन आपके सम्मुख कैसे खुल जाता है और खिल उठता है।

1.4 अध्ययन सामग्री (गतिविधि समाहित)–

गतिविधि 1–स्वयं की क्षमताओं एवं कमजोरियों को समझना

गतिविधि के उद्देश्य –

o स्वयं के गुणों /विशिष्टताओं व कमजोरियों को पहचान पाना।

o गुणों/विशिष्टताओं का अपने काम में उपयोग कर पाना तथा कमजोरियों को काम में बाधा बनने से रोक पाना।

o समूह के लोगों के गुणों/विशिष्टताओं का उपयोग करते हुए बेहतर सामूहिकता का विकास कर पाना।

समय– 1 घण्टा 30 मिनट

सामग्री– बोर्ड, बोर्ड मार्कर/चॉक, ''ए फोर'' साईज की रिम, डस्टर

प्रक्रिया –

बोर्ड पर निम्न प्रकार की एक सारणी बनाएं

1. मुझे पता है, दूसरों को भी पता हैं। • ..... • ..... •	2. मुझे पता नहीं लेकिन दूसरों को पता है। • ..... • ..... • .....
3. मुझे पता है, दूसरों को नहीं पता। • ..... • ..... •	4. मुझे नहीं पता, दूसरों को भी नहीं पता। • ..... • ..... • .....

प्रतिभागियों से इस पर काम करने से पहले चर्चा करें कि इस सारणी में चार खाने हैं, जिन्हें हमारे व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखकर बनाया गया है। हरेक व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुछ गुण/विशिष्टताएं होती है साथ ही कुछ कमजोरिया भी होती है। हम अपनी कमजोरियों को पहचान कर उन्हें ठीक करते जाते हैं, यही व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया होती है जब हम किसी समूह में काम करते है तब अपने गुणों/विशिष्टताओं तथा कमजोरियों का पहचानना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि अपने गुणों/विशिष्टताओं से जहां हम समूह के काम में अपना योगदान दे सकते हैं वही अपनी कमजोरियों को पहचानकर उनके कारण समूह के काम में आ रही बाधाओं को कम कर सकते हैं।

यह सब लेकिन इतना आसान नहीं होता। हमारे व्यक्तित्व के कई पहलू होते हैं जिनमें से कुछ के बारे में हम स्वयं तथा हमारे साथी बहुत अच्छी तरह से जान रहे होते हैं जैसे मुझे किन चीजों से चिड़ हैं, क्या नापसंद है, मैं तथ्यों का विश्लेषण करने में कमजोर हूँ आदि, तो कुछ के बारे में हम खुद अनजान होते है जबकि हमारे साथी शायद जान रहे होते हैं लेकिन कोई अवसर ना होने के कारण शायद कहने से बच रहे होते हैं जैसे मुझसे धैर्य नहीं हैं या मैं काम के दौरान बराबरी का व्यवहार नहीं कर पाता बल्कि साथियों पर हावी हो जाता हूं।

इसी तरह से हमारे व्यक्तित्व का एक पहलू ऐसा भी होता है जिसे हम कम ही उजागर करना चाह रहे होते हैं इसलिए उसके बारे में हमें खुद तो पता होता है लेकिन समूह के साथी शायद अनजान होते हैं। इस पहलू में ज्यादातर निजी किस्म की चीजें होती है। किन्तु कई बार इस पहलू में ऐसी चीजे भी होती हैं जिन्हें उजागर करने से समूह में आपका योगदान बढ़ सकता है। खासकर यह तब बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है जब आप समूह में नए–नए शामिल हुए हो अथवा आप नए नहीं है लेकिन फिर भी आपका कोई ऐसा

गुण/विशिष्टता जो अभी तक उजागर नहीं हुई किन्तु इस समूह के काम के लिए काफी महत्वपूर्ण है जैसे मान लीजिए आप बच्चों के लिए पाठ्यसामग्री या किताबें विकसित करने का अनुभव रखते है लेकिन अभी तक कभी इस गुण/विशिष्टताओं की आपके काम के दौरान जरूरत नहीं पड़ी।

परन्तु हो सकता है आपके व समूह को आगे कभी आपकी इस क्षमता की जरूरत पड़े । ऐसे में इसका उजागर होना आपके व समूह के लिए काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। या किसी को अपने विषय से जुड़ी कोई चीज नहीं आती लेकिन उन्हें सभी के सामने उस चीज के बारे में पूछने में डर लगता है, तो इसके बारे में अगर दूसरे जान लेते हैं तो वे आपकी मदद कर सकते हैं। या आपको किसी तरह की एलर्जी है तो इसका उजगार होना महत्वपूर्ण है ताकि समूह आपकी इस तकलीफ को ध्यान में रखते हुए आपका योगदान ले सकें। उक्त सारणी के क्रमशः 1, 2, 3 खाने ऐसी ही बातों से संबंधित है।

एक पक्ष हमारे व्यक्तित्व का ऐसा भी होता है जिसके बारे में हम भी नहीं जानते और दूसरे सार्थियों को भी उसका अंदाजा नहीं होता। सारण में खाना संख्या 4 इसीलिए रखा गया है। और इस गतिविधि को करते समय अधिकांशतः इसके खाली छूट जाने की संभावना होती है। इस खाने में ऐसी जानकारियां आती है जिनके आगे पता चलने की संभावना होती है जैसे मान लीजिए आपको किसी खास किस्म की मनौवैज्ञानिक समस्या है जैसे अथाह पानी से डर लगना। किन्तु कभी इतना पानी देखने का जीवन में अवसर ना आने के कारण इसका पता नहीं चला और बाद में कभी आप किसी यात्रा पर गए और आपने समुद्र का नजारा देखा तब आपको इस बारे में पता चला तो यह जानकारी खाना संख्या 4 में दर्ज हो जाएगी।

या फिर आपको अपनी उम्र के किसी खास पड़ाव पर कोई बीमारी हो जाती है जिसके बारे में उस वक्त डॉक्टरे से परामर्श के बाद पता चलता है तो वह भी इसमें आ सकती है। या आपके व्यक्तित्व का कोई ऐसा पहलू जिसके बारे में पता नहीं था लेकिन आपके काम को सतत आंकलन करने वाले आपके किसी साथी को अपने अवलोकनों से उस बारे में पता चला तो वह जानकारी भी इसी खाने में आएगी। लेकिन ध्यान दीजिए कि वह इसमें एक बार हो सकता है दर्ज हो जाए लेकिन जैसे ही उसके बारे में आपको या आपके समूह के किसी साथी को अथवा तो दोनों को पता चल जाता है तो वह फिर परिस्थिति अनुसार क्रमशः खाना संख्या 3, 2 या 1 में दर्ज हो जाएगी। और इस तरह खाना संख्या 4 फिर खाली हो जाएगी।

मूलतः माना यह जाता है कि आपके बारे में जितनी जानकारी खाना संख्या 2 व 3 में दर्ज हैं उन्हें जल्दी से जल्दी खाना संख्या 1 में आ जाना चाहिए। क्योंकि तभी आपके व्यक्तित्व की पेचीदगियां आपके समूह के साथियों के सामने व खुद आपके सामने खुल पाती हैं और उसी आधार पर आपकी क्षमताओं का अधिक से अधिक उपयोग हो पाना संभव होता है।

समूह के सदस्यों के बारे में जितनी ज्यादा जानकारी खाना संख्या 1 में आती है समूह में परस्पर विश्वास, मैत्री, भरोसा, सामूहिकता आदि की भावनाएं बढ़ती जाती हैं फलस्वरूप समूह की कार्यक्षमता व दक्षता भी बढ़ती जाती है। समूह में व्यक्ति बनाम समूह का द्वंद्व कम से कम होता जाता है।

समूह में चर्चा के दौरान बार–बार इस बात पर जोर दें कि हमें इस सारणी में व्यक्तित्व के पहलुओं की बहुत निजी किस्म की जानकारी नहीं चाहिए बल्कि हमारे लिए व्यक्तित्व के वे ही पहलू महत्वपूर्ण है जो हमारे काम से संबंध रखते हैं।

चर्चा के बाद गतिविधि इस तरह करवाई जा सकती है –

1. प्रतिभागियों को संख्या अनुसार पांच–छः समूहों में बांट दें। समूह विभाजन इस आधार पर किया जाए कि समूह के सदस्य एक–दूसरे से अच्छी तरह परिचित हों।
2. प्रत्येक समूह के हरेक सदस्य को ''ए–4'' साईज का एक–एक कागज दे दें।
3. इस चित्र के विषय में प्रतिभागियों को समझाएं कि प्रत्येक के व्यक्तित्व में कुछ विशेषताएं होती है जिन्हें उक्त सारणी के अनुसार चार भागों में बांटा जा सकता है। आप अपने व्यक्तित्व की ऐसी विशेषताएं या बातें जो आप स्वयं जानते है उन्हें खाना संख्या 1 मे लिखें। यह स्पष्ट कर दे कि प्रत्येक अपने

गुणों/विशिष्टताओं व कमजोरियों जैसे – मुझे विश्लेषण कर निष्कर्ष निकालना पंसद है को ही इसमें लिखे। नाम, शहर का नाम या वैवाहिक स्थिति, पद इत्यादि जैसे बिन्दुओं को छोड़ दें।

4. प्रत्येक प्रतिभागी को कागज पर उक्तानुसार दो भागों यानी खाना संख्या 1 व 3 में ही अपने बारे लिखना है क्योंकि आप अपने बारे में जितना कुछ जानते है वह इन्हीं दो खानों में दर्ज होगा।

5. जब प्रतिभागी अपने बारे में खाना संख्या 1 व 3 मे सारी बाते लिख लें तब अपना पन्ना समूह के दूसरे साथियों को दे दें व दूसरे जिन साथियों ने अपने बारे में लिख लिया हो उनसे उनका पन्ना ले लें

6. किसी समूह द्वारा किसी व्यक्ति के बारे में बातें लिखने का काम थोड़ा जल्दी हो सकें इसके लिए समूह के लोग दो या तीन टोलियां बना ले व उस टोली में वह व्यक्ति ना हो जिसके बारे में बाते लिखी जानी है। वह किसी और टोली का सदस्य बने जिसमें समूह के किन्ही दूसरे लोगों के बारे में खाना संख्या 2 में बातें लिखी जानी है।

7. टोली के लोग किसी के बारे में खाना संख्या 2 में बातें लिखें उससे पहले खुद उस व्यक्ति द्वारा खाना संख्या 1 में लिखी बातों को ध्यान से पढ़ ले व उसके द्वारा बताई जिन–जिन बातों से जितने लोग सहमत हो उतने सही (√) के निशान लगा दें व जिन बातें से जितने लोग असहमत हो उतने गलत (X) के निशान लगा दें। यह काम करने के बाद ही खाना संख्या 2 में बातें दर्ज करना शुरू करें।

8. खाना संख्या 2 में किसी के बारे में कोई बात लिखते वक्त समूह के कम से 3–4 व्यक्ति एक साथ चर्चा करके लिखें। जब अपनी बातें लिख लें तब समूह की दूसरी टोली को वह कागज पास कर दें। ध्यान रहे कि जिस भी टोली के पास किसी व्यक्ति का कागज आए और अगर वह व्यक्ति उस वक्त उस टोली में है तो वह व्यक्ति स्वयं उस टोली से बाहर हो जाए व दूसरी टोली में चला जाए जहां किसी और के बारे में बातें लिखी जा रही हों।

9. प्रशिक्षक इस दौरान सभी समूह का अवलोकन करें एवं आवश्यक सहयोग देते रहें।

10. काम पूरा होने पर सभी के पन्नों को एकत्र कर लें।

11. प्रशिक्षक बहुत संवेदनशीलता के साथ एक–एक कर सभी प्रतिभागियों के पन्नों पर चर्चा करते हुए प्रस्तुत करें । प्रस्तुतकरण में व्यक्तित्व के गुणों/विशिष्टताओं व कमजोरियों की पहचान कर उन पर चर्चा करें तथा गुणों/विशिष्टताओं का कार्यक्षेत्र में कैसे उपयोग किया जा सकता है इस पर चर्चा करें। कमजोरियों को कैसे कम किया जा सकता है अथवा उन्हें किस तरह गुणों/विशिष्टताओं में बदले जा सकने की संभावना है इस पर चर्चा करें। या उनका असर काम पर कैसे कम किया जा सकता है इस संभावना पर चर्चा करे।

12. चर्चा में इस बात को उभारें कि इस गतिविधि का मकसद लोगों के व्यक्तित्व से संबंधित ज्यादा से ज्यादा विभिन्न पहलुओं को खाना संख्या 1 में ले जाना है जो इस गतिविधि के दौरान हो रहा है। क्योंकि इस गतिविधि के जरिए किसी के भी व्यक्तित्व के अधिक से अधिक पहलु स्वयं व्यक्ति के सामने व समूह के अन्य साथियों के सामने उजागर होते जाते हैं। यह एक किस्म से व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को समूह में सार्वजनिक करने जैसा मामला है और सार्वजनिककरण सिर्फ किसी एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के पहलुओं का नहीं बल्कि उस समूह के सभी साथियों के व्यक्तित्वों के विभिन्न पहलुओं का है। और यही यह मूल बात है जिसके परिणामस्वरूप समूह के परस्पर विश्वास, मैत्री, भरोसा सामूहिकता आदि की भावनाएं बढ़ती जाती है फलस्वरूप समूह की कार्यक्षमता व दक्षता भी बढ़ती है। समूह में व्यक्ति बनाम समूह का द्वंद्व कम से कम होता जाता है।

आखिर में इस पूरे काम को समेकित करते हुए यह बात की जा सकती है कि हमारे आपसी संबंधों में जितनी पारदर्शिता होती है, जितना हम एक दूसरे के बारे में ज्यादा जाने हैं, उतना हमारा एक दूसरे पर भरोसा बढ़ता है और हम अपनी मजबूतियों पहचान कर दूसरों की मदद कर सकते हैं और अपनी कमजोरियों को समझ कर दूसरों की मदद ले सकते है।

ध्यान रखने वाली बातें –

✓ व्यक्ति के गुणों/विशिष्टताओं व कमजोरियों की पहचान सकारात्मक एवं नकारात्मक बिन्दुओं को स्पष्ट करें।

✓ गुणों/विशिष्टताओं व कमजोरियों को जानकर हम भविष्य में समूह कार्य को बेहतर बना सकते है। कार्यक्षेत्र में अपना प्रदर्शन बेहतर कर सकते है। इस पर चर्चा करें।

✓ साथ ही नकारात्मक बिन्दुओं को जानकर उनमें सकारात्मक परिवर्तन लाने की चर्चा करें।

✓ किस प्रकार की क्षमताओं को व गुणों को हमें एक दूसरे के बारे में लिखना है, प्रशिक्षक प्रक्रिया के पूर्व में उदाहरण देकर सभी को समझाएं।

✓ प्रक्रिया को कितनी गहराई तक ले जाना है एवं कहाँ तक सभी के साथ स्वस्थ्य रूप से चर्चा संचालित की जा सकती है इस पर प्रशिक्षक विचार कर बहुत संवेदनशीलता व सावधानी से प्रक्रिया को संचालित करें।

✓ खाना संख्या 1 व 3 लिखते समय व्यक्ति सामूहिक रूप से चर्चा न करें बल्कि नितांत व्यक्तिगत तरीके से लिखें।

✓ साझा की गई जानकारी का दुरूपयोग होने की संभावना तो नहीं है प्रशिक्षक इसे ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत करें।

✓ प्रशिक्षक कोशिश करें कि सभी के बारे में प्रस्तुतिकरण हो ताकि सभी एक–दूसरे की बातों के बारे में परिचित हो जाएं इससे जानकारियों के दुरूपयोग को एक हद तक कम किया जा सकें।

गतिविधि–2–मेरे जीवन का प्रेरक प्रसंग

उद्देश्यः घटना पर चिन्तन–मनन कर सकेगा।

- जीवन की घटना में भविष्य के लिये सुअवसरों को ढूंढ सकेगा।
- जीवन में घटित घटना से मानसिक शक्ति/शारीरिक शक्ति को बढ़ा सकेगा।
- घटना के कमजोर पक्ष को पहचान सकेगा।
- घटना के कमजोर पक्ष से सतर्क हो सकेगा।

सामग्री– श्यामपट, चॉक, पेपर

विधा– अवलोकन विधा, विश्लेषण विधा

कौशल– विद्यार्थी में समालोचना की क्षमता विकसित होगी।

विद्यार्थी में विश्लेषण करने की क्षमता विकसित होगी।

विद्यार्थी में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होगा।

समय– 1 1/2 घण्टा

सारणी– मेरे जीवन का प्रेरक प्रसंग

समूह क्रमांक	शक्ति स्थान	कमजोर पक्ष	आगामी अवसर	मेरी प्रेरणा	धोखे के प्रति सतर्क

निर्देशः

- शिक्षकवार, श्यामपट पर सारणी बनाएँ।
- समूहवार बैठक व्यवस्था करें।
- समूहवार प्रतिनिधि का चयन करें।
- समूहवार पेपर वितरण करें।
- व्यक्तिगत /समूहवार सारणी भरें/ चर्चा करें।
- शिक्षक द्वारा सारणी भरें/ चर्चा करें।

हमने जाना

- 'स्व' का मतलब होता है स्वयं की पहचान, स्वयं का व्यक्तित्व अर्थात् जो कुछ कोई व्यक्ति है।
- 'स्व' की अवधारणा का सम्बन्ध आत्मविकास से है।
- बच्चों में चेतना और आत्म का विकास एक ऐसी क्रमिक प्रक्रिया होती है, जिसमें बच्चे धीरे–धीरे खुद को दूसरों की भूमिका में रखना सीखते हैं और अपनी गतिविधियों को दूसरों के नजरिये से देखने की समझ हासिल करते हैं।
- 'स्व' या आत्म हमेशा प्रथम पुरूष के रूप में अभिव्यक्ति पाता है– मैं के रूप में।
- हमारा व्यक्तित्व हमारे पूर्वजों, माता–पिता से गुण–अवगुण प्राप्त कर तथा जिस परिवेश में हम रह रहे हैं, इन दोनों से मिलकर बनता है।
- किसी व्यक्ति के आत्म के बनने में उसके पर्यावरण, और संस्कृति की महती भूमिका होती है।
- शिक्षक को शिक्षित करना– अर्थात उसे स्वयं को समझने के लिए तैयार करना–सबसे कठिन काम है, क्योंकि हममें से ज्यादातर व्यक्ति किसी विचार–प्रणाली में या कर्म के ढांचे में पहले ही ढाले जा चुके हैं।
- अपने बच्चों से प्रेम करने का अर्थ है कि उनके साथ पूर्णतया संवाद में होना, यह देखना कि उनको ऐसी शिक्षा मिल रही है या नहीं जो उनको संवेदनशील, प्रज्ञावान और समन्वित बनाने में सहायक हो।

डीएलएड प्रथम वर्ष, पेपर 4, इकाई 1-स्वयं की क्षमता की खोज

अध्याय–4: स्वयं के द्वारा किए गए कार्यों की जिम्मेदारी लेना

2.01परिचय

2.02 उद्देश्य

2.1 अध्ययन सामग्री 1:जिम्मेदारी क्या है और इसे कैसे विकसित करें

2.2 अध्ययन सामग्री–2:सच्चे उत्तरदायित्व का अर्थ–कृष्णमूर्ति

2.3 अध्ययन सामग्री–3:चुनने की स्वतंत्रता और जिम्मेदारी–मारिया मोंटेसरी

2.4 अध्ययन सामग्री–4: दायित्वबोध–कृष्णमूर्ति

2.01 परिचय:

यह अध्याय स्वयं की क्षमता की खोज के एक और आयाम को सामने लाता है। पिछले अध्याय में हमने आत्मावलोकन अभ्यास द्वारा स्वयं की क्षमताओं एवं कमजोरियों या सीमाओं को समझने का प्रयास किया था। अगर हम अपनी क्षमताओं व कमजोरियों का एक वास्तविक आकलन कर पाते हैं तो यह हमें अपने कार्यों और कर्तव्यों का उत्तरदायित्व लेने की तरफ ले जाता है। अगर हम अपनी कमजोरियों से मुंह नहीं छिपाते हैं और अपने कामों में किसी चूक या भूल का दोषारोपण दूसरे पर कर जिम्मेदारी से बचने की कोशिश नहीं करते हैं तो यह हमें अपनी स्वयं की एक बेहतर पहचान की तरफ ले जाता है।

जवाबदेही वैसे तो जीवन के हर मोड़ में और हर दौर के लिए अच्छी है, मगर शिक्षा के क्षेत्र में इसके बगैर काम ही नहीं चल सकता। शिक्षा के साथ अगर उत्तरदायित्व की भावना नहीं है तो जल्द ही यह रस्मअदायगी में या किसी कोरे अनुष्ठान में बदल सकती है। आज जिस तरह से प्रमाणपत्र को शिक्षा की नियति और शिक्षा का हासिल मान लिया गया है, वह शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों द्वारा अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ने का ही परिणाम है।

एक शिक्षक के लिए उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति बनना बहुत आवश्यक है। अगर शिक्षक ही स्वयं द्वारा किए गए कार्यों की जिम्मेदारी नहीं लेगा तो वह अपने छात्रों को सही मायने में उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण के लिए प्रेरित कैसे कर पाएगा? एक शिक्षार्थी के लिए अपने कामों की जिम्मेदारी लेना जरूरी है। यह आदत सीखने से जुड़ी हुई है। शिक्षाध्यन के दौरान मिले कार्यों की जिम्मेदारी निभाकर ही वह ज्ञान के रास्ते पर आगे बढ़ सकता है।

इसलिए इस अध्याय में चार अध्ययन सामग्रियों द्वारा जिम्मेदारी लेने के सैद्धांतिक और व्यवहारिक पहलुओं का निरूपण किया गया है, जो छात्राध्यपकों को जिम्मेदारी के विचार, अहसास और तरीकों के प्रति संवेदनशील बना सकेंगे।

2.02 उद्देश्य :–

1. शिक्षक स्वयं के लक्ष्य के अनुसार कार्यो को सुनिश्चित कर सकेगा।
2. शिक्षक स्वयं द्वारा किये जाने वाले कार्यो की जिम्मेदारियाँ तय कर सकेगा।
3. शिक्षक स्वयं के कार्यो के प्रति जवाबदेह बन सकेगा।
4. शिक्षक विद्यार्थी अपने दायित्वों के प्रति संवेदनशील रहेगा।
5. शिक्षक अपने दायित्वों की समझ रख सकेगा।
6. शिक्षक अपने कार्यो का स्व अवलोकन कर सकेगा।
7. शिक्षक अपने उत्तरदायित्वों का महत्व समझ सकेगा।

2.1 अध्ययन सामग्री–1: जिम्मेदारी क्या है और इसे कैसे विकसित करें

जिम्मेदारी क्या है

जिम्मेदारी या जवाबदेही या उत्तरदायित्व शब्द हमारी आम जिंदगी के शब्द है और इनके मायने हम बखूबी समझते हैं। ये शब्द किसी व्यक्ति या संस्था के नैतिक तकाजों की तरफ भीइशारा करते हैं। जिम्मेदारी शब्द का इस्तेमाल हम किन–किन परिस्थितियों में करते हैं? एक तो यह कि किन्हीं व्यक्ति या स्थिति को लेकर हमारा कोई कर्तव्य बनता है तो उसे हम निभाते हैं या नहीं। दूसरा भाव इस बात का होता है कि हमारे द्वारा किए गए निर्णयों या उठाए गए कदमों को और उनके नतीजों, चाहे वे कैसे भी हों, की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने के लिए हम तैयार हैं या नहीं। तीसरी बात यह कि हमने दूसरों के साथ या

खुद अपने ही साथ कोई वायदे किए हैं या कोई संकल्प लिए हैं, उनकी जिम्मेदारी हम महसूस करते हैं या नहीं।

यहां हम साफ देख सकते हैं कि जिम्मेदारी होने और जिम्मेदारी लेने में एक बारीक सा अंतर है। इसका संबंध काम या वायदा पूरा होने से नहीं, बल्कि किसी बात का उत्तरदायित्व लेने से है। हमारे सार्वजनिक जीवन में हम जानते हैं कि ज्यादातर काम ऐसे होते हैं, जिनमें एक से ज्यादा व्यक्ति संलग्न होते हैं, इसलिए किसी काम की जिम्मेदारी दरअसल किसकी है, यह तय करना मुश्किल हो जाता है। मगर जिम्मेदारी लेना सीखना आत्मविकास का एक जरूरी जरिया है, जिसकी उपेक्षा करने से किसी व्यक्ति का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

जिम्मेदारी लेना एक व्यक्ति के जीवन को भी समृद्ध करता है। उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति की प्रामाणिकता से जुड़ा होता है। कोई जितना जिम्मेदार होगा, उतना ही अपने जीवन में प्रामाणिक होगा। किसी के सोचने, कहने और करने में संगति या मेल अगर ज्यादा है तो उस व्यक्ति को ज्यादा भरोसेमंद माना जाएगा।

रोमन दार्शनिक सिसरो मानते थे कि किसी व्यक्ति के लिए जिम्मेदारी के चार स्रोत हो सकते हैं–

1- मनुष्य होने के नाते जिम्मेदारी निभाना

2- अपने चरित्र के कारण जिम्मेदार होना

3- स्वयं से नैतिक अपेक्षाओं के परिणामस्वरूप जिम्मेदार होना

4- जीवन में किसी खास जगह (अपना परिवार, अपना देश, अपना पेशेवर ओहदा)के कारण जिम्मेदार होना

इन चारों स्रोतों को ध्यान से देखें तो हम कह सकते हैं कि किसी के ऊपर आयद जिम्मेदारी मोटे तौर पर दो तरह की हो सकती है।

एक– कानूनी जिम्मेदारी, जिसके लिए संबंधित व्यक्ति कानूनन बाध्य है

दो– नैतिक जिम्मेदारी, जिसके लिए व्यक्ति कानूनन बाध्य नहीं है, मगर जो उसके नैतिक विचारों व नैतिक चुनाव का प्रतिफल है

कानूनी व नैतिक जिम्मेदारी कई बार मिली–जुली होती है। कम से कम हमारे देश में बहुत से लोग कानूनी जिम्मेदारी को भी पूरा नहीं करते। इसलिए कानूनी जिम्मेदारी भी अपने पालन के लिए नैतिक जिम्मेदारी पर टिकी हुई लगती है।

उत्तरदायित्व के बारे में खास बात यह है कि इसे निष्क्रिय रहकर पूरा नहीं किया जा सकता। जिम्मेदारी सचेतनता और कर्म और कार्रवाई से जुड़ी हुई है।

क्या स्वतंत्रता या स्वायत्तता के बगैर जिम्मेदारी संभव है

उत्तर दायित्व और किसी व्यक्ति की कार्य करने की स्वतंत्रता आपसे में गहराई से जुड़े हुए हैं। हमारी जिंदगी में कई मौके ऐसे होते हैं जिनमें किसी व्यक्ति को किसी काम का उत्तरदायित्व मिला होता है, वहीं ऐसे मौके भी होते हैं, जिनमें उत्तरदायित्व आगे बढ़कर लिया जाता है।

उत्तरदायित्व की भावना तभी आ सकती है, जब किसी व्यक्ति को अपने कामों व निर्णयों में चुनाव करने की स्वतंत्रता भी मिली हुई हो। जब हम किसी चीज का निर्णय खुद करते हैं, तो उसके प्रति ज्यादा जिम्मेदार महसूस करते हैं। जब कोई निर्णय किसी संस्था द्वारा लिया जा रहा हो, तब भी व्यक्ति को निर्णय लेने के संबंध में किसी न किसी किस्म की स्वायत्ता मिलनी चाहिए। निर्णय करने में जितनी ज्यादा स्वायत्तता मिलेगी, जिम्मेदारी का अहसास उतना बढ़ेगा।

नौकरशाही में कई बार नियंत्रण और सख्त आदेशों के जरिए उत्तरदायित्व की भावना बढ़ाने की कोशिश की जाती है और बहुत से नियम–कायदों का हवाला दिया जाता है। मगर उत्तरदायित्व की सच्ची

भावना तभी आ सकती है, जब उसके साथ स्वतंत्रता भी हो। वयस्कों ही नहीं बच्चों को भी जब निर्णय की स्वतंत्रता दी जाए तो उनमें उत्तरदायित्व की भावना आने की संभावना ज्यादा हो जाती है। चुनने की आजादी के बगैर जिम्मेदारी भार भी बन सकती है। तब जिम्मेदारी से बचने या उसे किसी और के ऊपर थोपने का खेल भी शुरु हो सकता है।

जिम्मेदारी कैसे लें

उत्तरदायित्व को समझना और उसे वहन करना आसान नहीं माना जाता है। उसके लिए मानसिकता बदलना सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए शुरुआत दूसरों को दोष देना बंद करने से करनी होती है। मान कर चलें कि बाकी सब अपनी जिम्मेदारी नहीं निभा रहे हैं, और उस स्थिति में किसी को अपनी जिम्मेदारी निभानी है और अपने काम, निर्णय या कर्तव्य के प्रति उत्तरदायी होना है। उत्तरदायी होने को सफलता का पर्यायवाची नहीं माना जाना चाहिए। असफलताओं की भी जिम्मेदारी ली जा सकती है। यह एक सार्थक शुरुआत होती है। जो कुछ वास्तव में हुआ है, उसे स्वीकार करना जरूरी है। भूलें व चूकें किसी भी काम का हिस्सा होती हैं, उन्हें भी साफगोई से स्वीकारा जाए तो काम को आगे बढ़ाने में मदद मिलती है और जिम्मेदारी निर्धारित होती है। ईमानदारी से अपनी गलती को स्वीकारने से किसी भी व्यक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ती ही है।

जिम्मेदारी लेने का एक जरूरी कदम यह होता है कि अपना आकलन ईमानदारी से किया जाए। याने अपनी क्षमताओं और कमजोरियों का स्पष्ट मूल्यांकन किया जाए। अपने मूल्यों और विश्वासों को समझा जाए और हमारी जो भावनाएं व संवेग उनसे मेल नहीं खाती है, उन्हें नियंत्रित करने की कोशिश की जाए। जिम्मेदारी लेने के लिए यह भी जरूरी है कि हम अपनी ही नहीं बल्कि दूसरों की जरूरतों का भी ध्यान रख सकें।

इसके लिये हमें इन तथ्यों को जीवन में अपनाना होगा –हम कह सकते हैं कि उत्तरदायित्व लेने के लिए हमें स्वयं में विश्वास करना होगा और स्वयं का आदर्श स्वयं को तय करना होगा। इसके लिए हमें स्वयं के जीवन के लक्ष्य पर विचार करते रहना होगा। और स्वयं के कार्यो को करने की योग्यता को लगातार बढ़ाना होगा।

स्वयं के कार्यो की जिम्मेदारियाँ लेने का बहुत महत्व है। इससे स्वयं के जीवन के लक्ष्य निर्धारण में सहायता मिलती है। जिम्मेदारी लेने से हमें अपने कार्यो से स्वयं की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं, योग्यताओं, रूचिओं, दृढ़ इच्छा–शक्ति, दृढ़ संकल्प, श्रद्धा और आन्तरिक समर्पण आदि की पहचान करने में सहायता मिलती है। साथ ही हमें अपने कार्यो के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता मिलती है।

किसी व्यक्ति की स्वायत्तता के दो मुख्य आयाम हो सकते हैं। एक है सोचने–विचारने की स्वायत्तता, दूसरी है काम करने की स्वायत्ता। सोचने की स्वतंत्रता इस बात से जुड़ी हुई है कि हम अपना निर्णय स्वयं ले सकें, उसके लिए चीजों व बातों को परख सकें। वहीं काम करने की स्वायत्तता का अर्थ है कि हम कौन से काम करेंगे उसका फैसला हम खुद करेंगे। दोनों ही तरह की स्वायत्तता आपस में संबंधित है। कुल मिलाकर स्वायत्तता का अर्थ यह भी है कि हम अपनी आलोचना के प्रति खुले रहें और उनकी रोशनी में अपने फैसलों व कामों की समीक्षा कर सकें।

अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि शिक्षा की प्रक्रिया एक उत्तरदायी व्यक्ति के विकास मे क्या मदद कर सकती है। अगर शिक्षक में ही उत्तरदायित्व की भावना नहीं है तो वह छात्रों में यह भावना कैसे पैदा कर सकता है। हमें शिक्षक के लिए ऐसी परिस्थितियां और प्रेरणाएं बनानी होंगी कि वह स्वतंत्र रूप से निर्णय लेते हुए जिम्मेदारी महसूस कर सके।

बोध प्रश्न:

1. जिम्मेदारी निभाना किसे कहते हैं, इस पाठ के आधार पर बताएं।
2. जिम्मेदारी होने व जिम्मेदारी लेने के बीच के अंतर को स्पष्ट करें।

3. स्वायत्तता या स्वतंत्रता जिम्मेदारी को घटाती है या बढ़ाती है, आम जीवन से कोई उदाहरण देते हुए समझाएं

2.2अध्ययन सामग्री–2: सच्चे उत्तरदायित्व का अर्थ–कृष्णमूर्ति

उत्तरदायित्व शब्द को इसके पूरे अर्थ और अभिप्राय के साथ समझा जाना चाहिए। यह शब्द उत्तर देना से बना है– आंशिक रूप से उत्तर देना नहीं बल्कि समग्रता से। इस शब्द का निहितार्थ यह भी हैः पीछे की ओर लौटना– उत्तर को अपनी पृष्ठभूमि की ओर मोड़ना अर्थात् अपने संस्कारों की ओर लौटना। जैसा कि साधारणतः समझा जाता है, उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति से मानव संस्कारों की क्रिया है। हमारी संस्कृति, हमारा समाज, ये स्वभावतः हमारे मन को संस्कारबद्ध करते हैं– चाहे यह देशी संस्कृति हो या विदेशी।

इसी पृष्ठभूमि से हम उत्तर देते हैं और यह उत्तर हमारे उत्तरदायित्व को सीमित कर देता है।ये हमारे उत्तर को संस्कारबद्ध कर देते हैं और वे सदा सीमित और परिमित होते हैं। और इस प्रकार सदा असंगति और द्वन्द्व की स्थिति बनी रहती है तथा अव्यवस्था का जन्म होता है। यह अवश्यंभावी है और यह मानवों के बीच विभाजन पैदा करता है। विभाजन किसी भी प्रकार का हो, वह न केवल संघर्ष और हिंसा को जन्म देगा बल्कि अंततः युद्ध को भी।

यदि कोई व्यक्ति उत्तरदायी शब्द के वास्तविक अर्थ को समझ ले और आज संसार में जो कुछ हो रहा है उसे भी समझ ले, तो वह देखेगा कि उत्तरदायित्व अनुत्तरदायी हो गया है। अनुत्तरदायी क्या है, इसकी समझ में ही उत्तरदायित्व क्या है इसका हमें सम्यक बोध होने लगेगा। जैसा कि इस शब्द का निहितार्थ है, उत्तरदायित्व समग्र के लिए है, केवल अपने विचार के लिए नहीं, किन्हीं धारणाओं या धार्मिक विश्वासों के लिए नहीं बल्कि समग्र मानवजाति के लिए।

हमारी विभिन्न संस्कृतियों ने पृथकता और अलगाव पर ही बल दिया है, जिसे व्यक्तिवाद कहा जाता है, और जिसका परिणाम यह हुआ है कि हर आदमी जो चाहता है वह कर रहा है, या वह अपनी योग्यता और प्रतिभाग के एक खास छोटे से दायरे से प्रतिबद्ध हो रहा है– फिर यह प्रतिभा और योग्यता समाज के लिए कितना ही लाभकारी और उपयोगी क्यों न हो। इसका यह अर्थ नहीं कि हम सर्वसत्तावादियों की यह बात मान लें कि राज्य और राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिकारी ही महत्वपूर्ण हैं, व्यक्ति नहीं। राज्य तो एक धारणा है लेकिन मानव, हालांकि वह इसमें रहता हैं, एक धारणा नहीं है। भय एक वास्तविकता है, धारणा नहीं।

एक मानव मनोवैज्ञानिक तल पर सम्पूर्ण मनुष्य–जाति है। वह केवल इसका प्रतिनिधित्व ही नहीं करता बल्कि वह समग्र मानव–जाति है। वह मूलतः मनुष्य–जाति का सम्पूर्ण मानस और इसकी आत्मा है। इस वास्तविकता पर विभिन्न संस्कृतियों ने यह भ्रांति थोप रखी है कि प्रत्येक मानव भिन्न है। सदियों से मनुष्य–जाति इस भ्रांति में पड़ी हुई है और यह भ्रांति एक वास्तविकता बन गयी है। अगर कोई व्यक्ति ध्यान पूर्वक मनोवैज्ञानिक ढॉचे का अवलोकन करें तो वह पायेगा कि जैसे वह दुख भोगता है वैसे ही पूरी मनुष्य–जाति विभिन्न मात्राओं में दुख भोगती है। अगर अकेलापन आपको सताता है, तो अकेलापन केवल आपको ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव–जाति को है। दुख, यंत्रणा, द्वेष और भय सभी का अनुभव है।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक रूप से, आंतरिक रूप से, प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे जैसा ही है। शारीरिक और जीव विज्ञानीय रूप से फर्क तथा भिन्नतायें हो सकती है। कोई लम्बा हो सकता है, कोई नाटा, इत्यादि, लेकिन बुनियादी रूपसे एक आदमी पूरी मनुष्य–जाति का प्रतिनिधि है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक तल पर आप ही संसार हैः आप सम्पूर्ण मनुष्य–जाति के लिए उत्तरदायी हैं न कि एक पृथक मानव के रूप में, केवल अपने लिए, जो कि एक मनोवैज्ञानिक भ्रांति है। समग्र मानव–जाति के प्रतिनिधि के रूप में आप भी

समग्र हैं, आंशिक नहीं। इस प्रकार उत्तरदायित्व का एक बिलकुल ही भिन्न अर्थ हैं। व्यक्ति को इस उत्तरदायित्व की कला सीखनी है।

अगर कोई व्यक्ति इस बात के पूरे अर्थ को समझता है कि वह मनोवैज्ञानिक तल पर संसार है,तब उत्तरदायित्व प्रबल प्रेम बन जाता है। तब आप बच्चे की देखभाल करेंगे, न केवल उसकी कच्ची उम्र में बल्कि आप इस बात का ध्यान रखेंगे कि वह जीवन भर उत्तरदायित्व के अर्थ को समझे। उत्तरदायित्व की इस कला में जो बातें सम्मिलित हैं वे हैं आचार एवं व्यवहार, सोचने–विचारने का ढंग एवं सही क्रिया का महत्व। हमारे इन स्कूलों के प्रति, प्रकृति के प्रति एवं एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व हमारी एक शिक्षा का ही अंग हैं– न कि सारा जोर केवल शैक्षिक विषयों पर यद्यपि वे आवश्यक हैं।

तब हम पूछ सकते हैं कि शिक्षक क्या पढ़ा रहा है और शिष्य क्या ग्रहण कर रहा है– तथा अधिक व्यापक रूप से सीखना किसे कहते हैं? शिक्षक विद्यार्थी में– और इस प्रकार स्वयं में उत्तरदायित्व का वृहत बोध जगाना है? क्या ये दोनों साथ–साथ चल सकते हैं? अर्थात् शैक्षिक विषय जो एक नौकरी और पैसे में मदद करेंगे एवं यह उत्तरदायित्व जो सम्पूर्ण मनुष्य–जाति एवं जीवन के लिए होगा। या इन दोनों को एक दूसरे से अलग रखा जाना चाहिए?

अगर ये एक–दूसरे से अलग रहेंगे, तो विद्यार्थी के जीवन में अन्तर्विरोध होगा, वह पाखण्ड हो जायेगा और जानबूझकर या अचेतन रूप से अपने जीवन को दो अलग–अलग खण्डों में बनाये रखेगा। मनुष्य–जाति ऐसे–ऐसे ही विभाजन में जीती है। घर पर एक आदमी कुछ और है तथा कार्यालय या कारखाने में वह कुछ और ही चेहरा धारण कर लेता है। हमने यह प्रश्न उठाया है कि क्या ये दोनों साथ–साथ चल सकते हैं? क्या यह सम्भव हैं? जब इस प्रकार का प्रश्न रखा जाय तो इसका हॉ या न में उत्तरदेना महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण है प्रश्न के आशय और अभिप्राय की जॉच–पड़ताल करना। इसलिए सबसे महत्वपूर्ण चीज यह है कि आप किस ढंग से इस प्रश्न का सामना करते हैं।

अगर आप अपनी सीमित पृष्ठभूमि से इसका सामना करते हैं– और जैसा कि समस्त संस्कार सीमित है– तब आप प्रश्न के आशय और अभिप्राय की केवल आंशिक समझ रखेंगे। अतः आपको इस प्रश्न की ओर नये सिरे से आना चाहिए। तब आपको इस प्रश्न की व्यर्थता स्पष्ट हो जायगी, क्योंकि जैसे आप नये सिरे से इसका सामना करेंगे, आप देखेंगे कि ये दोनों दो धारणाओं की तरह आपस में मिलकर एक उग्र और भीषण प्रवाह का निर्माण करते हैं जो आपका जीवन है– समग्र उत्तरदायित्व का आपका दैनिक जीवन।

क्या आप विद्यार्थी को यह सिखा रहे हैं, यह स्पष्ट रूप से अनुभव करते हुए कि सभी पेशाओं में शिक्षक का पेशा और कार्य महानतम है? ये मात्र शब्द नहीं है बल्कि एक शाश्वत वास्तविकता, जिसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। अगर आप इसकी सत्यता को महसूस नहीं करते तब आपको वस्तुतः दूसरा पेशा अपना लेना चाहिए। और तब आप उन भ्रांतियों में जियेंगे जिन का सृजन मनुष्य–जाति ने अपने लिए किया है।

इस प्रकार क्या हम पुनः पूछ सकते हैंः आप क्या सिखा रहे हैं और शिष्य क्या सीख रहा है? क्या आप इस अद्‌भुत और अनूठे वातावरण का निर्माण कर रहे हैं जिसमें वास्तविक ढंग का सीखना घटित होता है? अगर अपने उत्तरदायित्व के सौंदर्य और इसकी विशालता को समझ लिया हे, तब आप विद्यार्थी के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी हैं– वह क्या पहनता है, वह क्या खाता है, उसकी बातचीत।

(स्रोत– जे कृष्णमूर्ति, स्कूलों के नाम पत्र,कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ इंडिया, वाराणसी, 1998)

बोध प्रश्न:

1. कृष्णमूर्ति के अनुसार उत्तरदायित्व शब्द का सही अभिप्राय क्या है?
2. अधिक व्यापक रूप से सीखने से कृष्णमूर्ति का आशय क्या है?

2.3 अध्ययन सामग्री–3:चुनने की स्वतंत्रता और जिम्मेदारी–मारिया मोंटेसरी व्यवस्था के प्रति संवेदनशीलता

एक अत्यंत साधारण घटना से एक और विवरण प्रकाश में आया। बच्चे उनके लिए बनाए गए उपकरण का प्रयोग करते थे लेकिन उसके वितरण और बाद में संभाल कर रखने का काम उनकी टीचर करती थी। उसने मुझे बताया कि जब वह यह काम कर रही होती तो बच्चे उसके पास खड़े हो जाते। वह उनको अपनी जगह पर जाकर बैठने भेजती पर वे फिर वापस आ जाते। ऐसा कई बार हुआ तो टीचर इस नतीजे पर पहुंची कि वे अवज्ञाकारी हो रहे हैं। जब मैंने उनको देखा तो मैं समझ गई कि वे सारा सामान खुद वापस रखना चाहते हैं। मैंने उनको ऐसा करने की छूट दे दी। इस तरह उनके जीवन में चीजों को करीने से रखने का एक नया परिवर्तन आया। अगर कुछ गलत हो गया हो तो उसे दुरुस्त करना उनके लिए बहुत रोमांचक काम था। अगर पानी का गिलास किसी बच्चे के हाथ से गिर जाता तो बाकी बच्चे दौड़ कर कांच के टुकड़े उठाते और फर्श को पोंछ कर सुखाते। एक दिन टीचर ने तिरेसठ अलग–अलग मापांकित रंग की गोलियों वाला एक छोटा बक्सा गिरा दिया। मुझे उसका भ्रम याद है क्योंकि इतने सारे मिलते–जुलते रंग थे जिनको पहचानना और अपनी जगह पर रखना मुश्किल काम था, लेकिन बच्चे तुरंत उसके पास दौड़ कर आए। उन्होंने बड़ी फुर्ती से सारी गोलियों को उनकी सही जगहों पर रख दिया। रंगो के प्रति उनकी यह संवेदनशीलता आश्चर्यजनक थी जो हम बड़ों में न थी।

चुनने की स्वतंत्रता

एक दिन टीचर को स्कूल आने में थोड़ी देर हो गई। वह अलमारी बंद करना भी भूल गई थी। उसने देखा कि बहुत से बच्चों ने अलमारी खोल ली है और उसके चारों तरफ खड़े हैं। कुछ उसमें से चीजें निकाल कर ले जा रहे थे। टीचर ने सोचा कि इससे चोरी करने की प्रवृत्ति प्रकट होती है। टीचर ने कहा कि, जो बच्चे चोरी करते हैं वे अपने स्कूल और टीचर के प्रति अनादर प्रकट करते हैं। इसलिए उनके साथ सख्ती बरतनी चाहिए और उन्हें सही और गलत का अंतर समझाना चाहिए। इसके उलट मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चे अब उपकरणों के बारे में जान गए थे और वे उनमें से अपने लिए चुनने में सक्षम हो गए थे। असल में बात यही थी। अब तो एक जीवंत और दिलचस्प गतिविधि आरंभ हो गई। बच्चों के पास अब अपनी वरीयताएं थीं और उन्होंने अपना–अपना काम चुन लिया था। उन्हें ऐसा करने में सुविधा हो, इसके लिए हमने बाद में उनके लिए सुंदर नीची अलमारियां मंगवा दीं जिसमें बच्चों के चुनाव के लिए सामान रखा गया। इसमें से वे अपनी आंतरिक इच्छानुसार उपकरण चुन सकते थे। इस तरह अभ्यास के दोहराव के साथ चुनने की स्वतंत्रता का सिद्धांत भी आ गया।

चुनने की इस स्वतंत्रता के साथ बच्चों की प्रवृत्ति और मानसिक आवश्यकताओं के बारे में अवलोकन और देख–रेख संभव हो गया।

एक दिलचस्प परिणाम यह देखा गया कि बच्चों ने उपलब्ध वैज्ञानिक उपकरणों में से कुछ ही चुने, सब नहीं। वे सदा वही उपकरण चुना करते थे। उनमें से कुछ की अपनी स्पष्ट वरीयता थी। बाकी उपकरणों को पड़ा रहने दिया गया और उन पर धीरे–धीरे धूल जमने लगी।

मैंने वे सभी उपकरण बच्चों के सामने प्रस्तुत किए और टीचर से कहा कि वह उनकी उपयोगिता समझाए और दिखाए। फिर भी बच्चे अपने आप उनको नहीं उठाते थे।

तब मेरी समझ में आया कि बच्चों के लिए जो परिवेश तैयार किया जाता है उसमें सब कुछ न केवल करीने से रखा जाना चाहिए बल्कि एक नपी तुली सीमा में ही होना चाहिए। बच्चों की एकाग्रता और रुचि तभी जागती है जब भ्रम और अत्यधिक मात्रा न हो। (स्रोतरू मारिया मोंटेसरी, बचपन का रहस्य, अनु. –सुषील कपूर, आकार, दिल्ली, 2013)

बोध प्रश्नः

1. बच्चों को उपकरणों को अपने आप नियत जगह पर वापस रखने की छूट देने से उनके व्यवहार में क्या परिवर्तन आया? शैक्षिक दृष्टि से इस परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।

2. चुनने की स्वतंत्रता नामक संस्मरण में मोंटेसरी के अलमारी में से सामान खुद निकालने के मामले में बच्चों का भरोसा करने का क्या परिणाम निकला? बच्चों को जिम्मेदार बनाने के लिए इससे क्या कोई सबक निकाला जा सकता है।

2.4 अध्ययन सामग्री–4: दायित्वबोध–कृष्णमूर्ति

15 मई 1979

इस प्रकार शिक्षक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वह अपने परस्पर सम्बन्धों में समग्र उत्तरदायित्व का अनुभव करें, न केवल वह स्वयं के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण मनुष्य–जाति के प्रति। वह स्वयं मनुष्य जाति है। यदि वह स्वयं के लिए पूर्णतः उत्तरदायी अनुभव नहीं करता तो वह समग्र उत्तरदायित्व के आवेग और उत्कटता को – जो वस्तुततः प्रेम है – अनुभव करने में सर्वथा असमर्थ होगा। क्या एक शिक्षक के रूप में आप अपनी पत्नी, अपने पति या बच्चों के प्रति उत्तरदायी अनुभव होंगे, किन्तु सम्भव है कि दूसरे के लिए आपके भीतर उपेक्षा का भाव हो या किसी उत्तरदायित्व का बोध हो ही न। लेकिन अगर आप अपने भीतर पूर्णतः उत्तरदायी अनुभव करते हैं तो आप समस्त मानव के लिए उत्तरदायी अनुभव भला कैसे नहीं करेंगे।

यह प्रश्न कि आप दूसरे के लिए उत्तरदायी अनुभव क्यों नहीं करते, अत्यंत महत्वपूर्ण है। उत्तरदायित्व कोई भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं है। उत्तरदायी अनुभव करने के लिए आप उत्तरदायित्व को अपने ऊपर आरोपित नहीं कर सकते। क्योंकि तब यह कर्तव्य बन जाता है और कर्तव्य में वह सौन्दर्य या सुवास कहाँ जो समग्र उत्तरदायित्व की आन्तरिक गुणवत्ता में है? यह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे आप एक सिद्धांत या धारणा के रूप में आमंत्रित करके अपने अधिकार में कर लें – जैसे एक कुर्सी यह घड़ी पर मालकियत जतायी जाती है। एक माँ अपने बच्चे के लिए उत्तरदायी अनुभव कर सकती है कि बच्चा उसकी माँस–मज्जा का हिस्सा है और इसलिए वह कुछ वर्षों तक उस शिशु को अपना समस्त ध्यान और देखभाल प्रदान कर सकती है। क्या मातृत्व की इस नैसर्गिक प्रवृत्ति को उत्तरदायित्व कहा जा सकता है? हो सकता है कि बच्चे के प्रति इस विलक्षण ममता और आसक्ति को हमने जगत के प्रथम पशु से विरासत में प्राप्त किया हो। यह चीज सकल प्रवृत्ति में व्याप्त है – छोटे से छोटे पक्षी से लेकर विशाल हाथी तक में। हम पूछ रहे हैं– क्या यह नैसर्गिक प्रवृत्ति उत्तरदायित्व है? यदि यह होती तो माँ–बाप एक सही प्रकार की शिक्षा के लिए, एक पूर्णतः भिन्न प्रकार के समाज के लिए, स्वयं को उत्तरदायी अनुभव करते। वे इस बात का ख्याल रखते कि पृथ्वी से समस्त युद्ध सदा के लिए समाप्त हो जायें और यह भी कि एक मानव के रूप में वे स्वयं अच्छाई में प्रस्फुटित हों।

इस प्रकार ऐसा मालूम होता है कि एक मानव को दूसरे की कोई चिंता नहीं है बलिक वह केवल अपने साथ प्रतिबद्ध है। यह प्रतिबद्धता 'समग्र अनुत्तरदायित्व' है। उसकी अपीन भावनायें, उसकी अपनी व्यक्तिगत इच्छाएँ, उसके अपने लगाव, उसकी सफलता, उसकी तरक्की – ये अनिवार्य रूप से निष्ठुरता और बेरहमी पैदा करेंगे, प्रकट रूप से और सूक्ष्म रूप से। क्या सच्चे उत्तरदायित्व का यही अर्थ है?

इन स्कूलों में वह जो प्रदान करता है और वह जो ग्रहण करता है, वे दोनों ही उत्तरदायी हैं और इसलिए वे अलगाव की इस विचित्र अवस्था में कभी लिप्त नहीं हो सकते। अहंकार और स्वार्थ से प्रेरित यह अलगाव ही शायद मन की समग्रता के अधःपतन का आधार है और मन की समग्रता से ही हमारा वास्तविक सरोकार रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि वहाँ व्यक्तिगत सम्बन्ध ही नहीं होता, जिसमें स्नेह हो, कोमलता हो, सहृदयता हो, प्रोत्साहन और समर्थन हो। लेकिन तब व्यक्तिगत सम्बन्ध ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन जाता है और उत्तरदायित्व मात्र कुछ व्यक्तियों तक सीमित हो जाता है, तो समझिये कि उपद्रव शुरू हुआ; और इस सच्चाई का ज्ञान हर व्यक्ति को है। मानव सम्बन्धों का यह खण्ड–खण्ड विभाजन हमारे जीवन में अधःपतन का कारण है। हमने अपने सम्बन्धों को टुकड़ों में तोड़ रखा है ताकि यह किसी व्यक्ति विशेष के साथ हो, किसी समूह या किसी राष्ट्र के साथ हो, कतिपय धारणाओं के साथ हो, इत्यादि। वह जो खण्डों में बँटा है। उसे उत्तरदायित्व की समग्रता की समझ कदापि नहीं हो सकती। जो छोटा है उसे छोड़कर, हम

जो बड़ा है, उसे पकड़ना चाहते हैं। जो "अधिक अच्छा" है वह अच्छा से भी ऊपर है और हमारी सारा सोच–समझकर अधिक अच्छा पर आधारित है, अधिक पर आधारित है – परीक्षा में बेहतर, बेहतर नौकरी, बेहतर हैसियत, बेहतर ईश्वर, उच्चतर विचार।

1 दिसम्बर 1982

ऐसा लगता है बहुत कम शिक्षकों को अपनी महती जिम्मेदारी का आभास है। उनकी यह जिम्मेदारी केवल अभिभावकों के प्रति नहीं है बल्कि विद्यार्थियों के साथ उनके सम्बन्धों के प्रति भी है। यह सम्बन्ध कैसा है? किस प्रकार इसको हम देखते हैं? क्या यह सूचनाओं–जानकारियों का आदान–प्रदान भर है? क्या यह कुछ तथ्यों का मौखिक संप्रेषण भर है? और क्या यह सम्बन्ध सिर्फ सतही है, आकस्मिक और अस्थायी है? क्या शिक्षक एक उदाहरण है?

क्या शिक्षक बनकर मैं विद्यार्थियों पर प्रभाव डालना चाहता हूँ? यदि मैं एक उदाहरण हूँ जिसे कुछ विद्यार्थियों को आदर्श बनाना चाहिए तो मैंएक तानाशाह हूँ। तब अनुशासन एक नकल भर बन जाता है। वे मेरी, मेरे तौर–तरीकों और हावभावों की नकल करने लगते हैं। पर मैं नहीं चाहता कि वे मेरा अनुकरण करें और उन पर मेरा प्रभाव हो। मैं चाहता हूँ कि वे समझें कि कैसे हम सब लोग प्रभावित हैं, किस तरह से आदर्श या नमूनों काअनुकरण करने के लिए हम बाध्य हैं। मैं यह महसूस करता हूँ कि विद्यार्थियों को अच्छे या बुरे सभी प्रकार के प्रभावों से मुक्त करने में मदद की जाए ताकि वे स्वयं यह देख सकें कि सही कर्म क्या है।

मुझे उन्हें यह नहीं बताना है कि सही कर्म क्या है बल्कि उनमें स्वयं मिथ्या और सत्य को देखने की सहज प्रेरणा और क्षमता विकसित होने देना है। अर्थात् मेरा सरोकार उनकी प्रज्ञा के विकास से है जिससे कि वे जीवन का और उसकी तमाम जटिलताओं का प्रज्ञापूर्वक सामना कर सकें। मैं इसे एक लक्ष्य की तरह नहीं देख रहा हूँ बल्कि एक प्रत्यक्ष वास्तविकता के रूप में देख रहा हूँ। मुझे पता है वे अपने माता–पिता से, अपने सहपाठियों और अपने चारों तरफ के संसार से प्रभावित हैं। युवा लोग तो आसानी से प्रभावित हो जाते हैं। वे विद्रोह भी करते हैं लेकिन चेतन या अचेतन रूप से उन पर एक दबाव बना रहता है और वह दबाव तनाव पैदा करता है। तो मैं एक शिक्षक और मानव होने के नाते अपने आप से पूछता हूँ कि किस तरह मैं उस प्रज्ञा की गुणवत्ता और ऊर्जा को ला सकता हूँ?

मैं यह देखना शुरू करता हूँ कि कर्म की दुनिया में मुझे अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों होना है, आन्तरिक रूप से मुझे स्व–केन्द्रित नहीं होना है– मुझे अपनी ऑखों को और कानों को जीवन की सूक्ष्मताओं के प्रति खोले रखना है। जिसका अर्थ है कि मुझे इस काबिल होना है कि उदारता की रक्षा के साथ उसका सवंर्धन भी कर सकूँ, अर्थात् ग्रहणकर्ता के साथ पोषक भी रहूँ। यदि मैं सच्चे अर्थों में एक समर्पित शिक्षक हूँ। तो मैं इस सबके लिए महसूस करूँगा।

मेरे लिए यह एक पेशा भर नहीं है– यह कुछ ऐसा है जिसे किया ही जाना चाहिए। इसलिए मैं दुनिया और उसकी घटनाओं को लेकर काफी अधिक सजग रहता हूँ और भीतर से इस बात की जरूरत को समझता हूँ कि स्व–केन्द्रित मानसिकता से परे जाया जाए। मैं इस सारी भीतरी और बाहरी गति को एक सम्पूर्ण गति के रूप में देखता हूँ जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता, उसी तरह जेसे सागर का पानी आता और जाता है, लेकिन रहता एक ही है। अब मेरा प्रश्न है– मैं कैसे अपने विद्यार्थी की इस सबके प्रति सजग होने में मदद करूँ?

संवेदनशील होने का अर्थ है कोमल होना अर्थात् सुभेद्य होना। हम अपनी प्रतिक्रियाओं, मानसिक आघातों तथा परेशानियों से घिरी जिन्दगी के प्रतिसंवेदनशील होते हैं, जिसका अर्थ यही है कि हम अपने प्रति संवेदनशील होते हैं। और ऐसी अवस्था में स्व7हित की भावना तो होती ही है, और इसीलिए हम आहत और मानसिक रूप से रूग्ण होने की हालत में भी होते हैं।

यह प्रतिरोध का ही एक रूप है जो मूलतः स्वार्थ पर केन्द्रित है। जबकि कोमलता की शक्ति स्व–केन्द्रित नहीं होती। यह वसन्त की कोमल पत्ती के समान होती है जो तूफानी हवाओं को झेलते हुए भी

विकसित होती है। चाहे कैसी–भी परिस्थिति हो, इस कोलता में आहत नहीं हुआ जा सकता। इस कोमलता में स्व का कोई केन्द्र नहीं होता। इसमें एक अनूठी शक्ति, जीवन्ता और सौन्दर्य होता है।

एक मानव के नाते और एक शिक्षक के नाते मैं यह सब काफी स्पष्टता से अपने अन्दर देखता हूँ। लेकिन एक शिक्षक के रूप में मैं ऐसा नहीं हूँ। मैं इसका अध्ययन कर रहा हूँ, सीख रहा हूँ। शिक्षक के रूप में विद्यार्थी के साथ मेरा एक सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध में मैं सीख रहा हूँ। मैं कैसे अपने विद्यार्थियों तक यह सब पहुँचाऊ जो कि संस्कारबद्ध और विचाराहीन हैं। और जो सामान्य बच्चों की तरह शैतानी से भरे हुए हैं? मैं हैरानी में हूँ कि कैसे मैं गणित, जीव विज्ञान, और भौतिकी पढ़ाते हुए यह सब उन तक पहुँचा सकता हूँ? अथवा ये सब चीजें अलग हैं जिन्हें केवल रटा जाना है? जबकि दूसरी चीज को मैं स्मृति की प्रक्रिया के रूप में नहीं देखता, इसलिए मेरे पास यह समस्या है– एक तरफ तो है इतिहास और तरह–तरह के विषयों का स्मृति में पोषण जिससे परीक्षाएँ पास की जा सकें और अन्ततः कोई काम मिल जाए, और दूसरी तरफ है प्रज्ञा जिसके बारे में मुझे ऐसा आभास है कि वह यांत्रिक नहीं है, स्मृति की पैदाइश नहीं है। यह है मेरी समस्या।

और मैं अपने–आप से पूछ रहा हूँ कि क्या ये दो अलग–अलग चीजें हैं? अथवा प्रज्ञा, यदि वह जीवन के शुरूआत में ही जगा दी जाती है, स्मृति को भी शामिल कर सकती है और इसकी गुलाम भी नहीं बनती हैं? बड़ी वस्तु छोटी वस्तु को अपने अन्दर समेट लेती है। ब्रम्हाण्ड में हर वस्तु शामिल है। लेकिन हर वस्तु स्वयं अपने संकीर्ण दायरे में नहीं टिकी रह सकती।

मैं इस महत्वपूर्ण बिन्दु को गहराई से समझना शुरू कर रहा हूँ क्योंकि मैं एक समर्पित शिक्षक हूँ जो शिक्षण का प्रयोग कहीं और पहुँचने के लिए सोपान के रूप में कर रहा है। तो मैं दुविधा में हूँ कि अपने सामने बैठे इन बच्चों का क्या करूँ। इन लोगों की इस सब में रूचि नहीं है। ये लोग एक दूसरे को चिढ़ाने, प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या करने के लिए तैयार हैं।

अब आप, जो कि बाहर से हैं, क्या मेरी समस्या को समझ रहे हैं? आपको इसे समझना पड़ेगा क्योंकि आप भी अपने तरीके से एक शिक्षक हैं– घर में, खेल के मैदान में या व्यवसाय में। हम सभी लोग किसी–न–किसी रूप में शिक्षक हैं– इसलिए मुझे अपनी समस्या के साथ अकेला मत छोड़ दीजिए क्योंकि यह आपकी भी समस्या है। तो आइये इस पर बातचीत करें।

मुझे उम्मीद है कि हम दोनों ही यह देखते हैं कि जिन बच्चों के प्रति हम उत्तरदायी हैं उनमें इस प्रज्ञा को जगाना ही सबसे पहली और बड़ी जरूरत है। समस्या को हल करने के लिए मुझे अकेला मत छोड़िए– हम मिलकर इस पर बातचीत कर रहे हैं। सबसे पहले मुझे और आपको इस समस्याको गहराई से समझना है। थोड़ी देर के लिए बच्चों और विद्यार्थियों को अलग छोड़ दीजिए। क्या हम यह देखते हैं विद्यार्थी को आगे चलकर कोई नकोई काम करना होगा, इसलिए उसे संसार को, इसकी जरूरतों और इसकी अन्तर्निहित अव्यवस्था को, तथा इसके निरन्तर विनाश व पतन को गहराई से समझना होगा?

उसे इस संसार का सामना एक विशिष्ट हस्ती के रूप में नहीं करना है– विशिष्टता संसार कासामना करने की क्षमता उसमें नहीं आने देती। तो इस सबका निहितार्थ यह हे कि ज्ञान का अर्जन तो हो लेकिन उसका सावधानीपूर्वक अनुशासन भी हो। संसार जब तक ऐसा रहेगा, जैसा कि यह आज है, तब तक मनुष्य एक खास दिशा में कार्य करने के लिए विवश होगा और अधिकांश समय इसी में फॅसा रहेगा, शायद दिन के आठ–दस घंटे। साथ ही उसे सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक संसारका अध्ययन करना होगा जिसकी जॉच–पड़ताल अभी किसी के द्वारा नहीं हुई है। जिन्होंने थोड़ी–बहुत की भी है तो वे अपनी खोज के बारे में बताते हैं और यह ज्ञान बन जाता है जिसका विद्यार्थी केवल अनुकरण करते हैं। यह शुद्ध जॉच–पड़ताल नहीं है। तो मेरी और आपकी यह समस्या है।

हो सकता है आपकी इसमें कम रूचि हो लेकिन एक शिक्षक के नाते मैं इससे वास्तव में जुड़ा हुआ हूँ। मैं स्वयं भी संस्कारबद्ध हूँ। मैं उस अर्थ में खुला हुआ, कोमल नहीं हूँ जैसा कि उपर कहा गया है। मेरे पास पारिवारिक समस्याएँ हैं, लेकिन मेरी निष्ठा इन सबको पीछे छोड़ देती है। मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं? क्या यह इस बात की मॉ करता है कि कुछ नहीं किया जाए बल्कि और शिक्षकों के साथ

मिलकर इस निष्ठा का वातावरण तैयार किया जाए? निष्ठा कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे बाद में लक्ष्य के रूप में हासिल किया जाए। निष्ठा सदा वर्तमान की क्रिया है जिसमें समय की कोई भूमिका नहीं है।

(स्रोत– जे कृष्णमूर्ति, स्कूलों के नाम पत्र,कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ इंडिया, वाराणसी, 1998)

बोध प्रश्नः

1. कृष्णमूर्ति के अनुसार कर्तव्य और उत्तरदायित्व में क्या अंतर है?
2. कृष्णमूर्ति के अनुसार समग्र उत्तरदायित्व और समग्र अनुत्तरदायित्व में अंतर स्पष्ट करें।
3. कृष्णमूर्ति के अनुसार एक शिक्षक की अपने छात्रों के प्रति जिम्मेदारी क्या है?

हमने जाना

- जिम्मेदारी होने और जिम्मेदारी लेने में एक बारीक सा अंतर है। इसका संबंध काम या वायदा पूरा होने से नहीं, बल्कि किसी बात का उत्तरदायित्व लेने से है।
- उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति की प्रामाणिकता से जुड़ा होता है। कोई जितना जिम्मेदार होगा, उतना ही अपने जीवन में प्रामाणिक होगा।
- उत्तरदायित्व की भावना तभी आ सकती है, जब किसी व्यक्ति को अपने कामों व निर्णयों में चुनाव करने की स्वतंत्रता भी मिली हुई हो।
- जिम्मेदारी लेने का एक जरूरी कदम यह होता है कि अपना आकलन ईमानदारी से किया जाए।
- जिम्मेदारी लेने के लिए यह भी जरूरी है कि हम अपनी ही नहीं बल्कि दूसरों की जरूरतों का भी ध्यान रख सकें।
- किसी व्यक्ति की स्वायत्तता के दो मुख्य आयाम हो सकते हैं। एक है सोचने–विचारने की स्वायत्तता, दूसरी है काम करने की स्वायत्ता।
- उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति से मानव संस्कारों की क्रिया है। हमारी संस्कृति, हमारा समाज, ये स्वभावतः हमारे मन को संस्कारबद्ध करते हैं– चाहे यह देशी संस्कृति हो या विदेशी।
- आप सम्पूर्ण मनुष्य–जाति के लिए उत्तरदायी हैं न कि एक पृथक मानव के रूप में, केवल अपने लिए, जो कि एक मनोवैज्ञानिक भ्रांति है।
- बच्चों के लिए जो परिवेश तैयार किया जाता है उसमें सब कुछ न केवल करीने से रखा जाना चाहिए बल्कि एक नपी तुली सीमा में ही होना चाहिए। बच्चों की एकाग्रता और रुचि तभी जागती है जब भ्रम और अत्यधिक मात्रा न हो।
- शिक्षक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि वह अपने परस्पर सम्बन्धों में समग्र उत्तरदायित्व का अनुभव करें, न केवल वह स्वयं के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण मनुष्य–जाति के प्रति।

डीएलएड, पेपर 4– स्वयं की पहचान इकाई 1– स्वयं की क्षमता

अध्याय 3– आत्म–सम्मान बोध तथा भावनात्मक एवं संवेगात्मक एकीकरण द्वारा सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना

3.01 परिचय

3.02 उद्देश्य

3.1 अध्ययन सामग्री–1: आत्म–सम्मान बोध और भावनाओं की समझ

3.2 अध्ययन सामग्री–2: भावनाएं, शिक्षा और भावनात्मक स्वास्थ्य– कमला मुकुंदा

3.3 गतिविधियां

3.01 परिचय

इस अध्याय के तीन हिस्से हैं। पहले हिस्से में भावनाओं का परिचय दिया गया है। साथ ही आत्म–सम्मान, आत्म–छवि के बारे में चर्चा की गई है। किसी बच्चे या व्यक्ति में आत्म–सम्मान कम या ज्यादा होने के क्या कारण हो सकते हैं, इसका विश्लेषण किया गया है। दूसरा हिस्सा शिक्षा, खासकर स्कूली जीवन में नकारात्मक और सकारात्मक बातों के प्रभाव की पड़ताल करता है। इस हिस्से में कुछ मनोवैज्ञानिक अध्ययन के जरिए आत्म–सम्मान की चर्चा की गई है। तीसरा हिस्सा गतिविधियों का है, जिन्हें छात्र–अध्यापक अपने शिक्षकों की सहायता से या स्वयं समूह बनाकर कर सकते हैं।

3.02 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप –

- खुद को समझने की दिशा में और आगे बढ़ पाएंगे
- अपनी भावनाओं और मनोवेगों को समझने की कोशिश शुरु कर पाएंगे
- छात्रों की अंतःप्रेरणा, बौद्धिक सामर्थ्य, सफलता, शारीरिक स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य जैसे मुद्दों के प्रति जागरुक हो पाएंगे
- छात्रों की व स्वयं की बेचौनी, गुस्सा, शर्मिंदिगी, नाउम्मीदी, ऊब, थकान, खुशी, उत्साह, विश्वास जैसी भावनाओं को बेहतर तौर पर समझ पाएंगे
- परीक्षाओं से पैदा होने वाले तनाव और इसे दूर करने के उपायों के बारे में समझ बना पाएंगे
- स्कूल के माहौल व अन्य सामाजिक वजहों से पैदा होने वाली नकारात्मक भावनाओं से ज्यादा कारगर तरीके से निपट सकेंगे
- एक शिक्षक के रूप में छात्रों की मनोवैज्ञानिक दिक्कतों के प्रति ज्यादा संवेदित हो पाएंगे

3.1 अध्ययन सामग्री–1. आत्म–सम्मान बोध और भावनाओं की समझ

इस पाठ में आत्म–छवि, आत्म–सम्मान क्या है, इसकी चर्चा की गई है। साथ ही आत्म–सम्मान के कम या ज्यादा होने के कारणों की परिचय दिया गया है। हमारे आत्म–सम्मान बोध में हमारी भावनाएं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए भावनाओं का एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इनमें नकारात्मक व सकारात्मक दोनों भावनाएं शामिल हैं। इस परिचयात्मक पाठ के बाद आप अगले पाठ में इन्हीं भआवनाओं के बारे में शैक्षणिक संदर्भ में चर्चा का अध्ययन करेंगे।

आत्म–छवि: लोगों में खुद की एक आदर्श छवि गढ़ने की प्रवृति होती है। ऐसी छवि गढ़ कर व्यक्ति कई बार वैसा बनने की कोशिश भी करता है। जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं, वे सही–गलत, अच्छे–बुरे, नैतिक–अनैतिक की समझ बनाने लगते हैं। एक समय किशोर खुद को खास महत्त्व देने लगता है। वह आत्म–सम्मान के संवेग के असर में अपनी एक खास तस्वीर बना लेता है कि

मैं एक ऐसा व्यक्ति हूं जो झूठ नहीं बोलता, या जो अन्याय सहन नहीं कर सकता या जो बुजुर्गों का सम्मान करता है यो जो दिए गए वचन को निभाता है। ऐसी आत्म–छवि का सकारात्मक असर होता है। जाहिर है कि आम जीवन में ऐसे कई मौके आते हैं, जब उसे अपनी आत्म–छवि से विपरीत काम करने पड़ते हैं। ऐसे समय द्वंद्व या दुविधा विकसित होती है। यह स्थिति इच्छा शक्ति के विकास का मौका भी दिलाती है। व्यक्ति धीरे–धीरे अपना एक ज्यादा स्थाई स्वभाव हासिल करने लगता है, जो उसके व्यक्तित्व की पहचान भी बन जाता है।

आत्मसम्मान: अध्याय एक स्वयं का अवलोकन में हमने देखा था कि समाज की प्रतिक्रियाओं और मूल्यांकन के जरिए किसी व्यक्ति का स्व या आत्म किस तरह उभरता है। आत्म–सम्मान बोध आत्म बोध से जुड़ा हुआ है। सबसे सरल स्तर पर कहा जा सकता है कि एक सीमा तक यह किसी व्यक्ति के प्रति दूसरों द्वारा किए गए मूल्यांकन का प्रतिबिंब है। व्यक्ति के आत्मसम्मान की मात्रा उसके व्यवहार को प्रभावित करती है। आत्मसम्मान की वह मात्रा किसी के कार्य के क्षेत्र को सीमित करने या विस्तृत करने में सहायक होती है, चाहे उनका संबंध शैक्षिक कार्य से हो, खेल से हो या फिर दोस्ती से हो। नीचा आत्मसम्मान बच्चों की पहलकदमी को कम करता है जबकि उच्च कोटि का आत्मसम्मान बच्चे को प्रयत्नशील, स्वतंत्र निर्णय लेने वाला बनाता है। आत्मसम्मान तब तक स्वयं के प्रति और स्वयं के व्यवहार के प्रति एक सकारात्मक अभिवृत्ति है, जब तक कि यह आत्म दंभ में न बदल जाए।

आत्म–छवि के कई हिस्से होते हैं। अपने शरीर, मन, चरित्र, भावनात्मक पक्ष के बारे में खुद का आकलन इसमें शामिल होता है। दूसरों की तारीफ भी इसमें शामिल हो जाती है। जैसे कोई गाना अच्छा गाता है या मिलनसार है। व्यक्ति को कुछ न कुछ हद तक अपनी योग्यताओं और कमजोरियों का एक मोटा आकलन रहता है। इन सब का जोड़ मिलकर आत्मछवि बनती है। यह बदल भी सकती है। कई बार हमारी अपने बारे में राय दूसरों की हमारे बारे में राय से मेल नहीं खाती है। सामाजिक टीका–टिप्पणी का भी आत्मछवि पर असर पड़ता है।

कई बार नकारात्मक आत्मछवि व्यक्ति का आत्मविश्वास डगमगा देती है। आत्मछवि का योग्यता से कोई सीधा संबंध नहीं है। योग्य व्यक्ति की आत्मछवि भी ज्यादा नकारात्मक हो सकती है। कई बार जीवटता से या कई घटनों के चलते आत्मछवि ज्यादा सकारात्मक भी बनने लगती है।

आत्मसम्मान खुद के भीतर की सकारात्मक बातों के आत्म–स्वीकार से बनता है, चाहे उनमें से कुछ को बढ़ा–चढ़ाया गया हो। आत्मविश्वास और खुद की योग्यताओं व कौशल में भरोसा आत्म–सम्मान को गढ़ता है। आत्म–सम्मान कई बातों से बनता–बिगड़ता है।

इसलिए आत्म–सम्मान स्थाई नहीं होता और न जन्मजात होता है। इसे हासिल किया जाता है। कई बार जब आत्म–सम्मान को चोट पहुंचती है, तो फिर इसे धीरे–धीरे प्राप्त किया जा सकता है। आत्म–सम्मान अर्जित किया जाता है, इसलिए माता–पिता, शिक्षक, स्कूल की जिम्मेदारी किसी छात्र का आत्म–सम्मान बनाने में महती हो जाती है।

अगर बच्चे को गया–गुजरा और नकारा समझा जाएगा तो उसका आत्म–सम्मान कमजोर हो जाएगा। वहीं अगर उसे सही तारीफ व स्वीकार भाव और स्वायत्तता मिलती है तो उसका आत्म–सम्मान बढ़ जाएगा।

बच्चे में आत्म–सम्मान जगाने की पहली सीढ़ी है उसके ऊपर भरोसा करना और उसे काम करने का मौका देना। बच्चे को पर्याप्त स्नेह, सुरक्षा और भरोसा मिलता है तो उसका आत्म–सम्मान आकार लेने लगता है। इसी तरह स्कूल में शिक्षकों पर निर्भर करता है कि वे अपने स्कूल के प्रत्येक छात्र में आत्म–सम्मान बोध को कैसे जागृत और मजबूत कर सकते हैं।

हरेक बच्चे में बचपन से ही गहरी सकारात्मकता होती है। जो कई बार परिस्थितियों के चलते क्षीण होती जाती है। परिवार, समुदाय, व्यापक समाज, जिसमें स्कूल, परीक्षाएं, सत्ता व शक्ति संबंध शामिल हैं,

बच्चे में ये धारणाएं भर देते हैं कि वह नकारा है, वह बेकार है, वह मूर्ख है, वह भरोसे या प्यार के लायक नहीं है।

अगर मिली–जुली राय हो तो भी कोई बात नहीं। बल्कि मिली–जुली राय व्यक्तित्व विकास का मौका भी देती है। मगर गहरी नकारात्मक राय बहुत नुकसानदायक हो सकती है, जो ताजिंदगी किसी का पीछा कर सकती है।

आत्म–सम्मान बोध के कम होने के कई कारण हो सकते हैं। ज्यादातर कारण सामाजिक व आर्थिक हैं।

वंचना: जो बच्चे अभावों, वंचना के बीच बड़े होते हैं, उन्हें कई तरह की क्रूरताओं का सामना करना पड़ता है। गरीबी के अलावा उपेक्षा, लानत–मलामत, गलाजत का उन्हें सामना करना पड़ता है। वे खुद को अकेला और दीन–हीन समझने लगते हैं।

पारिवारिक माहौल– इसमें भी सबसे ज्यादा जिम्मेदार होता है मां–बाप की नाकामियों से उपजी कुंठा और गुस्से का बच्चे का शिकार बनना। बच्चों पर शिक्षा या रोजगार या विवाह संबंधी निर्णयों को कई बार थोप दिया जाता है। इससे भी बच्चों व युवाओं का आत्म–सम्मान खत्म हो जाता है।

ज्यादा आलोचना– जिसे आम बोलचाल की भाषा में कान मारना भी कहते हैं। इससे भी आत्मविश्वास पर चोट पहुंचती है।

अति–महत्त्वाकांक्षा: कई बार बहुत ऊंची महत्त्वाकांक्षा पालने से भी आत्म–सम्मान पर बुरा असर पड़ने लगता है। कई लोग आईएएस की परीक्षा देते हैं, और मुख्य परीक्षा में असफल होने के बाद गहरी निराशा के शिकार हो जाते हैं।

हम विभिन्न अवसरों पर अलग–अलग भावनाओं का अनुभव करते हैं और उन्हें व्यक्त करते हैं। ये भावनाएँ सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार की हो सकती हैं। क्रोध, चिड़चिड़ापन, डर, ईर्ष्या, घबराहट, खुशी, आश्चर्य, उल्लास, निराशा, संकोच, शर्म, ग्लानि आदि भावनाओं के नाम हैं। ये सभी भावनाएँ कुछ विशेष स्थितियों में तीव्रता से उभरती हैं। भावनाएँ परिवर्तनशील होती हैं। कोई एक भावना क्षणिक भी हो सकती हैं। हमारे जीवन में प्रत्येक भावना का अपना महत्व है। कोई भावना स्थाई रूप से अच्छी एवं बुरी नहीं होती है अर्थात भावनाएँ सापेक्षिक होती है। जैसे हम किसी व्यक्ति से निःस्वार्थ स्नेह करते हैं और वह धोखा देता है फिर इस स्नेह को भूल जाना चाहिये। चोरी करना बुरी बात है यह आदत नहीं छूटी तो हमें नुकसान उठाना पड़ सकता है।

भावनाओं का जन्म उनका हमारे जीवन के साथ सामंजस्य, परिस्थितिजन्य भी होता है। वातावरण भावनाओं को प्रभावित करता है। निराशा में होते हुए भी ख़ुशी का माहौल हमारी मनःस्थिति को बदल देता हैं इसी प्रकार प्रफुल्ल होते हुए भी उदासी के माहौल में हम दुःख महसूस करने लगते हैं।

भावनाओं को महसूस करना व व्यक्त करना स्वाभाविक बात हैं। इसमें गलत कुछ नहीं है किंतु यदि ये अच्छी या बुरी भावनाएं हमारे दैनिक जीवन व संबंधों में बाधा डालती हैं तो हमको इनके विषय में कुछ करना चाहिए। सभी तरह की भावनाएं हमारे जीवन का हिस्सा हैं। कुछ विशेष कारणों तथा बिना किसी कारण के भी हम कभी बहुत खुशी, प्रसन्नता तथा उल्लास का अनुभव करते हैं तो कभी उदासी, निराशा तथा चिड़चिड़ापन हम पर हावी हो जाता है। हम इनके कारणों व अपने मन की अवस्था को ठीक प्रकार से समझ नहीं पाते, स्वयं परेशान रहते हैं तथा दूसरों को भी तनाव में डालते हैं। हम कुछ ऐसी भावनाओं को विस्तार से समझें जो हमारे जीवन को प्रभावित करती हैं–

- **हमारी भावनाएं ...**उदासी, समर्पण, संकोच, साहस, सुरक्षा, उत्तेजना, ईर्ष्या, घबराहट, चिड़चिड़ापन, लज्जा, वात्सल्य, कुण्ठा, उल्लास, स्नेह, आशा, निर्बलता, संदेह, ग्लानि, शांति, प्रेम, प्रसन्नता, क्रोध, हीनता, उतावलापन, डर, घमण्ड, शर्मीलापन, निराशा, सहानुभूति, द्वन्द्व, चिन्ता, उलझान, आक्रोश, प्रफुल्लता, असुरक्षा आदि हैं।

- **क्रोध**

यह एक ऐसी मानसिक अवस्था है जो थोड़ी चिड़चिड़ाहट से लेकर तेज गुस्से एवं हिंसात्मक व्यवहार के रूप में व्यक्त हो सकती है। जब कोई व्यक्ति क्रोध करता है तो आंखे लाल हो जाती हैं, सांस तेजी से चलने लगती हैं अर्थात गुस्से के साथ कुछ परिवर्तन शरीर के अंदर भी होते हैं तथा कुछ बाहर। वस्तुतः क्रोध किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाला एक क्षणिक आवेश है। आवेश व्यक्ति को इच्छा के अनुसार परिवर्तन लाने के लिए प्रेरक का काम करता है। स्वयं से व दूसरों से अपेक्षाओं के पूरा नहीं होने के कारण हम इस स्थिति को बदलना चाहते हैं तथा गुस्से के रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

स्त्रोत :– किशोरी बालिका मंडल परियोजना, साध्येन संदर्भ पुस्तिका, निदेशालय, महिला अधिकारिता, महिला एवं बाल विकास विभाग, जयपुर से साभार।

- **भय**

यह दुःख पहुंचाने वाली एक भावना है जो उपस्थित या आने वाले खतरे के प्रति हमारी जागरुकता प्रदर्शित करती है। आत्मरक्षा से जुड़ी यह भावना हमको चौंकन्ना व सावधान बना देती है। डर के कारण कभी वास्तविक होते हैं तो कभी काल्पनिक। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति एक घटना, स्थिति या व्यक्ति से किसी विशेष कारण से डर महसूस करता है तथा उससे मिलती जुलती घटना, स्थिति व व्यक्ति से भी अकारण डरना शुरू कर देता है।

- **निराशा**

निराशा एक ऐसी भावना है जो सामान्य उदासी व दुःख से शुरू होकर गम्भीर अवसाद के रूप में अभिव्यक्त हो सकती है, जिसके कई व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक कारण होते हैं। बार–बार असफल होना, नकारात्मक सोच, स्वास्थ्य खराब होना, असाध्य बीमारी होना, परिवार में कलह रहना आदि कारणों से थोड़े समय के लिए अथवा लम्बे समय तक व्यक्ति में निराशा व अवसाद की भावना घर कर लेती है। किसी वास्तविक कारण से कुछ समय के लिए निराश रहना एक सामान्य सी बात है किंतु बिना किसी खास कारण के, लम्बे समय तक इस अवस्था में रहना चिन्ताजनक हो सकता है। व्यावहारिक अपेक्षाएं व उच्चाकांक्षाएं पूरी नहीं होतीं तब निराशा पैदा हो जाती है। यहां पर यह समझना भी आवश्यक है कि कुछ जैव–रासायनिक परिवर्तनों के कारण भी व्यक्ति में निराशा अथवा अवसाद की भावना आ जाती है जो उपचार के माध्यम से दूर की जा सकती है। किशोरों में बढ़ती हुई आत्महत्या का एक मुख्य कारण निराशा का भाव भी है।

निराशा का एक कारण हमारा भूतकाल भी है। हम हमारे बीते हुए समय की असफलताओं को लिए बैठे रहते हैं, जिससे निराशा के अलावा कुछ नहीं मिलता। वास्तविकता यह है कि हमें अपने बीते हुए समय के साथ नहीं रहना चाहिये वरन् वर्तमान में रहते हुये भविष्य के लिए चिन्तन करना चाहिये।

जहाँ एक ओर ईर्ष्या, द्वेष, चिन्ता जैसे नकारात्मक भाव हैं वहीं दूसरी ओर प्रेम, प्रफुल्लता, खुशी, आनन्द, उत्साह, उमंग जैसे सकारात्मक भाव भी होते हैं–

- **प्रेम**

प्रेम एक ऐसी मानसिक अवस्था है जब हमें किसी व्यक्ति के प्रति मन में एक लगाव महसूस होता है। उस व्यक्ति के प्रति हमारे व्यवहार में स्नेह व अच्छी भावनाएं जागृत होने लगती हैं। हमें उसका समीप्य अच्छा लगने लग जाता है। प्रेम भावना जागृत होने पर हमारे अन्दर तथा आस–पास के वातावरण में स्थित व्यक्तियों के प्रति सकारात्मक सोच उत्पन्न होती है।

- **प्रफुल्लता**

यह एक ऐसी सकारात्मक भावना है जिसमें हम अत्याधिक ऊर्जा और उत्साह के साथ अपने कार्य करते हैं। प्रफुल्ल होने पर हमें आस–पास का वातावरण अधिक सजीव व प्रेरणास्पद लगने लगता है तथा हमारी सोच और कार्य दोनों सकारात्मक हो जाते हैं।

इन सभी भावनाओं को वस्तुपरक आधार पर समझना कठिन है क्योंकि इनका मुख्य आधार व्यक्ति की अपनी सोच, धारणा व समाजीकरण का परिणाम होता है। सभी भावनाओं की किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति होती है। इन भावनाओं की तीव्रता को आत्म–मूल्यांकन द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। यदि हम अपनी भावनाओं को पहचान कर तत्संबंधी कारणों को समझने का प्रयास करते हैं तो अपने परिवार, समाज और मित्र समूह के सम्मुख उन भावनाओं को यथा समय, उचित रूप से अभिव्यक्त कर सकते हैं। किसी भी अच्छी या बुरी भावना पर नियन्त्रण रखना तथा समय व परिस्थिति के अनुसार उसको अभिव्यक्त करना एक कला है, जिसे अभ्यास द्वारा सीखा जा सकता है।

अपने क्रोध–आवेश के लाभ और हानियों का ध्यान अवश्य रखें –

लाभः–

- हमें लक्ष्य तक पहुंचाने, आपात स्थितियों से निपटने तथा समस्या सुलझाने के लिए प्रेरित करता है।
- हमें अपने तनाव एवं परेशानियों को व्यक्त करने में मदद करता है।
- हम क्या महसूस करते हैं, यह दूसरों को सम्प्रेषित करता है

हानिः–

- शारीरिक एवं भावात्मक हिंसा अथवा अपराध का रूप ले लेता है।
- सामाजिक अलगाव एवं विकृति का रूप ले लेता है।
- अन्य भावनाओं को दबाकर हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुंचाता है।

(स्रोत– इस अध्याय को यूएनएफपीए समर्थित किशोरी बालिका मंडल परियोजना, साथिन संदर्भ पुस्तिका, 2010और कमला मुकुंदा व अन्य मनोवैज्ञानिकों के लेखों के आधार पर बनाया गया है।)

3.2 पठन सामग्री–2: भावनाएं, शिक्षा और भावनात्मक स्वास्थ्य– कमला मुकुंदा

इस पाठ को शिक्षाशास्त्री कमला मुकुंदा द्वारा लिखे गए लेख 'भावनाएं, शिक्षा और भावनात्मक स्वास्थ्य' के कई हिस्सों को आधार बना कर लिखा गया है। इसे कमला मुकुंदा की पुस्तक 'व्हाट डिड यू आस्क ऐट स्कूल टुडेरू ए हैंडबुक ऑन चाइल्ड लर्निंग' से लिया गया है, जिसे हार्पर कॉलिंस ने 2009में प्रकाशित किया था। इस लेख का हिंदी अनुवाद दिल्ली विश्वविद्यालय के केंद्रीय शिक्षा संस्थान ने योगेंद्र दत्त से करवाया है। कमला मुकुंदा एक ख्यात शिक्षाशास्त्री और मनोविज्ञानी हैं। संप्रेषण की दृष्टि से मूल पाठ को कई जगह संपादित किया गया है।

शिक्षार्थियों को जानना

किसी शिक्षक के लिए दुनिया की सैकड़ों भाषाओं में से संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा है 'देह की भाषा'। एक शिक्षक के लिए यह जरूरी है कि वह चिकनी–चुपड़ी बातों, शरारती नजरों और लटके चेहरों पर लिखी इबारत पढ़ना जानता हो, क्योंकि इन्हीं से उसे विद्यार्थियों के अंदरूनी अहसासों का सुराग मिलेगा। शैक्षणिक संदर्भ में विद्यार्थी जो भावनाएं व्यक्त करते हैं उनको शैक्षणिक भावनाएं कहा जाता है।

ये भावनाएं विद्यार्थियों की बहुत सारी बातों जैसे अंतःप्रेरणा, बौद्धिक सामर्थ्य, सफलता, शारीरिक स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य आदि को प्रभावित करती हैं। हम सभी जानते हैं कि अगर कोई विद्यार्थी खुश नहीं है, अगर वह बेचौन या गुस्सा है तो आप उसे जो भी पढ़ाइए, वो ज्यादा कुछ नहीं समझ पाएगा। दूसरी तरफ, अगर वह एकाग्र होकर दिलचस्पी लेते हुए और निर्भय होकर पढ़े तो चीजों को ज्यादा अच्छी तरह सीखेगा। लेकिन ये तो हिमखंड की सिर्फ चोटी है। दरअसल स्कूल के कामों और स्कूल के प्रदर्शन के प्रसंग में विद्यार्थी रोज असंख्य भावनाओं के उतार–चढ़ाव से गुजरते हैं।

शिक्षा में भावनाएं कितनी जरूरी?

कायदे से हमें अपने विद्यार्थियों की भावनात्मक अवस्थाओं को भी उतनी ही अहमियत देनी चाहिए जितनी हम उनकी शैक्षणिक शिक्षा को देते हैं। लेकिन एक औसत स्कूली माहौल में शिक्षक के लिए हरेक विद्यार्थी की भावनात्मक जरूरतों पर ध्यान दे पाना बहुत मुश्किल रहता है। विद्यार्थी इतने ज्यादा होते हैं और वक्त इतना कम होता है। हम सभी विद्यार्थियों की शैक्षणिक या अकादमिक भावनाओं पर ध्यान देने के लिए जरूरी वक्त और ताकत नहीं लगा सकते, इसीलिए शायद हम उनको पूरी तरह नजरअंदाज करके चलने लगते हैं। यहां तक कि हम सीखने की प्रक्रिया में उनके महत्व को भी नकारने लगते हैं। हम खुद को यह दिलासा देने लगते हैं कि विद्यार्थियों की भावनाएं 'निरथर्क' हैं, उन पर ध्यान देने की जरूरत नहीं है क्योंकि पढ़ाई और इम्तिहान जैसे मसले ज्यादा अहम जो ठहरे।

बहरहाल, एक बात तय है कि अगर सीखने की प्रक्रिया में भावनाओं की उपस्थिति और प्रभाव को मान्यता न मिले तो पूरी संभावना है कि हमारे पढ़ाने का बहुत सारा हिस्सा बेकार जाता रहेगा। कहने का मतलब यह है कि भावनाओं का बच्चों की अंतःप्रेरणा और बौद्धिक सामर्थ्य के साथ बहुत गहरा रिश्ता होता है और ये तीनों चीजें स्कूल में चलने वाली सारी शिक्षा का आधार होती हैं। हालांकि हम अक्सर उनको अलग–अलग दिखाने की कोशिश करते हैं लेकिन हकीकत की जमीन पर वे एक दूसरे में उलझी हुई हैं।

उदाहरण के लिए, हो सकता है कक्षा में कोई बच्चा अपने में खोया रहता हो, सीखने का विरोध करता हो या बहुत आक्रामक हो। उसके ऐसे व्यवहार की पीछे उसके विश्वासों या रवैयों का तो हाथ होगा ही, वे गुस्से, शर्मिंदगी और अपराधबोध जैसी बुनियादी नकारात्मक भावनाओं का परिणाम भी हो सकती हैं। इसी तरह, अगर कोई बच्चा कक्षा की गतिविधियों में बढ़–चढ़कर हिस्सेदारी करता है तो इसके पीछे न केवल गतिविधियों के महत्व और मूल्य से संबंधित उसके विश्वास काम करते हैं बल्कि बोरियत, दिलचस्पी, लगाव और आनंद जैसी भावनाओं का भी हाथ होता है।

मनोवैज्ञानिक डेमासियो एवं इमोरदिनो–यांग ने इस बात को बहुत बेबाक अंदाज में कहा है। हमें भावनाओं को एक ऐसे नन्हे बच्चे की तरह नहीं देखना चाहिए जो अनायास ही दुकान में रखे कांच के बर्तनों को तोड़ने लगता है बल्कि भावनाओं को उस शेल्फ की तरह देखना चाहिए जिसमें कांच के बर्तन सुरक्षित रखे गए हैं! हम आमतौर पर 'ये या वो' की तर्ज पर सोचने की कोशिश करते हैं। मसलन हम

बॉक्स-**1**

गतिविधि संबंधी भावनाएं

o *आनंद* (उत्तेजना और विश्रामपूर्ण अवस्था, दोनों) जब गतिविधि को महत्व दिया जाता है और सीखने पर नियंत्रण रहता है।

o *हताशा* जब गतिविधि को महत्व दिया जाता है और नियंत्रण कम रहता है।

o *बोरियत* जब गतिविधि को महत्व नही ंदिया जाता है।

परिणाम संबंधी भावनाएं

संभावनाओं से संबंधित भावनाएं

o *आशापरक आनंद* जब सफलता अपेक्षित होती है।

o *नाउम्मीदी* जब विफलता अपेक्षित होती है।

o *उम्मीद* जब परिणाम अनिश्चित होता है लेकिन सफलता पर जोर दिया जाताहै

o *बेचैनी* जब परिणाम अनिश्चित होता है लेकिन ध्यान विफलता पर रहता है।

उत्तरवर्ती भावनाएं

o *आनंद* जब सफलता मिल जाती है।

o *दुख* जब सफलता नहीं मिलती।

o *निराशा* जब सफलता अपेक्षित थी लेकिननहीं मिली।

o *राहत* जब विफलता अपेक्षित थी लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

सामाजिक भावनाएं

o *गर्व* जब सफलता को अपनी करनी के रूप में देखा जाता है।

o *शर्मिंदगी* जब भारी कोशिश के बावजूद सफलता नहीं मिलती।

o *अहसान* जब सफलता को शिक्षक या किसी और की मदद का परिणाम माना जाता है।

o *गुस्सा* जब विफलता को किसी और की हरकतों का नतीजा मान लिया जाता है।

अकसर खालिस तर्कशील विचार, या भावनाओं से रहित बुद्धि का हवाला देते हैं। लेकिन तर्कशीलता और सीखने का ताल्लुक सामाजिक फीडबैक सो होता है और ये एक भावनात्मक प्रक्रिया होती है।

स्कूल का भावनात्मक माहौल

अगर हम विद्यार्थियों की भावनाओं पर ध्यान देने की अहमियत को मानते हैं लेकिन उन पर ध्यान नहीं दे पाते हैं तो इस समस्या का हल क्या है? विद्यार्थियों के भावनात्मक स्वास्थ्य पर ध्यान देने का एक और बेहतर तरीका भी है। इसका तरीका यह है कि स्कूल में ऐसा वातावरण बनाया जाए, जो लगाव भरा हो और निर्वैयक्तिक और प्रतिस्पर्धी होने की बजाय बच्चों के व्यक्तित्व को मान्यता देता हो। दरअसल ऊंचे प्रदर्शन और तुलनात्मक मूल्यांकन पर परंपरागत रूप से जितना जोर दिया जाता रहा है वह विद्यार्थियों में उतनी घातक भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को जन्म देता है। हमें पता होना चाहिए कि कुछ खास भावनात्मक अवस्थाएं सीखने की प्रक्रिया, सहपाठियों के आपसी संबंधों, अभिभावकों व शिक्षकों के साथ बनने वाले संबंधों और विद्यार्थी के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को निश्चित रूप से चोट पहुंचा सकती हैं।

हालांकि यह बात गर्व और आशा जैसी कुछ खास 'सकारात्मक' भावनाओं के बारे में भी उतनी ही सच है। हमारी शिक्षा में प्रदर्शन के मानकों पर जितना भारी जोर दिया जाता है, उसको देखते हुए हम अपने बच्चों के लिए इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकते कि उन्हें अपनी हानिकारक भावनाओं का 'सामना करने' में मदद दें। लेकिन सामना करने की ये कोशिश तो निहायत अधूरा हल है! दूसरी तरफ, अगर शैक्षिक वातावरण सुगम और सहायक हो तो शैक्षणिक भावनाओं के मसले को ज्यादा मुकम्मल ढंग से संबोधित किया जा सकता है।

आगे शैक्षणिक भावनाओं और उनमें से भी दो भावनाओं – आनंद और बेचैनी – पर जरा विस्तार से चर्चा की गई है।

शैक्षणिक या अकादमिक भावनाएं

आप चाहें तो एक अभ्यास के तौर पर ऐसी शैक्षणिक भावनाओं की सूची बना सकते हैं जो, आपकी राय में, विद्यार्थी हमेशा अनुभव करते हैं। फिर अपनी सूची को बॉक्स– 1में दी गई सूची से मिलाकर देखें। ये सूची मनौवैज्ञानिक राइनहार्ड पेक्रून एवं उनके सहकर्मियों ने जर्मनी के कुछ स्कूलों के विद्यार्थियों से इकट्ठा किए गए आंकड़ों के आधार पर तैयार की थी। विद्यार्थियों से कहा गया था कि वे कक्षा के दौरान, घर में पढ़ने के समय, इम्तिहानों के दौरान अपनी भावनाओं का वर्णन करें। इन मौखिक ब्यौरों से मनौवैज्ञानिकों ने व्याख्याओं के साथ एक वर्गीकरण तैयार किया था जिसको बॉक्स 1में दिखाया गया है।

इस अध्ययन में बेचैनी को सबसे आम भावना पाया गया (सारी भावनाओं में से पंद्रह से पच्चीस प्रतिशत हिस्सा)। लेकिन, अगर हम इन भावनाओं को केवल 'सकारात्मक' और 'नकारात्मक' की श्रेणियों में बांट कर देखें तो पता चलता है कि सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं की कुल बारम्बारता लगभग बराबर है।

गौर करने वाली बात यह है कि इस टेबल में सफलता संबंधी भावनाओं की भरमार है – ऐसी भावनाएं जो सफलता और विफलता की अपेक्षा या उसके परिणामस्वरूप पैदा होती हाती है।ये इस बात का सबूत है कि स्कूल सीखने की बजाय प्रदर्शन का मंच बन गया है।

लेकिन इस टेबल में गतिविधि संबंधी जो चंद भावनाएं दी गई हैं – आनंद, हताशा और ऊब – ये भी बेहद महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे सीखने में हिस्सेदारी या जुड़ाव की भावनाओं का नतीजा होती हैं। जब परिस्थितियां अनूकूल हों तो विद्यार्थियों में भावनाओं का 'प्रवाह' पैदा होता है, उनमें किसी काम को करने का अहसास और चुनौती का बोध पैदा होता है।

दो मनोवैज्ञानिकों ने इस कथित सकारात्मक भावना के क्षेत्र में काफी काम किया है उनका नाम ऐलिस आइजेन एवं बारबरा फ्रेडरिक्सन है और दोनों ने ही खुशी, कृतज्ञता, आनंद, दिलचस्पी, उत्सुकता आदि भावनाओं के फायदों के बारे में बताया है। आइज़ेन ने बेहतर समस्या समाधान या ज्यादा सामंजस्यपूर्ण सामाजिक व्यवहार जैसे फौरी लाभों को चिन्हित किया है। फ्रेडरिक्सन का अनुसंधान इस बारे में है कि बहुत संक्षिप्त सकारात्मक भावनाओं से भी लंबे दौर में कितने लाभ मिलते हैं। उनके मुताबिक, 'सकारात्मक

भावनाओं से व्यक्ति न केवल वर्तमान में अच्छा महसूस करता है बल्कि उन भावनाओं से उसकी सोच में विस्तार भी आता है। सकारात्मक भावनाएं इस बात की संभावनाओं को बढ़ा देती हैं कि लोग भविष्य में भी अच्छा महसूस करेंगे।'

परीक्षाएं और बेचैनी

इसके बरक्स उन्होंने अवसादग्रस्त मनोदशा के प्रभावों को रखा है जो व्यक्ति को ज्यादा संकुचित विचारों व व्यवहारों की तरफ धकेलती है और इससे व्यक्ति और ज्यादा अवसाद में घिर जाता है। जब हम अच्छी मनोदशा में होते हैं, हमारा मूड अच्छा होता है तो हमारे पास ज्यादा अच्छे विचार होते हैं और हम ज्यादा अन्वेषी होने के साथ–साथ घुलने–मिलने की भी कोशिश करते हैं। यह खुलापन हमारे भीतर स्थायी संसाधनों (बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक) को जन्म देता है जो भविष्य में भी हमारे लिए मददगार साबित होते हैं।

यहां से हम सीखने पर नकारात्मक भावनाओं के प्रभावों की तरफ बढ़ते हैं और शैक्षणिक बेचौनी पर ध्यान दे सकते हैं जिसका दुनिया भर के विद्यार्थियों में जिक्र किया जाता रहा है। बीते दशकों के दौरान परीक्षाओं से पैदा होने वाली बेचौनी के बारे में किए गए शोधों ने बार–बार ये दिखाया है कि यह भावना कितनी विनाशकारी हो सकती है – परीक्षाओं के प्रदर्शन के लिहाज से भी और सामान्य व्यक्तित्व के लिए भी। यह बेचौनी कामकाजी स्मृति के बेशकीमती संसाधनों को चाटे पहुंचाती है जिससे जटिल कार्यों (जिनमें ऐसे संसाधनों की ज्यादा जरूरत पड़ती है) पर बच्चों का प्रदर्शन कमजोर पड़ने लगता है।

मसला ये है कि बेचौनी के कारण बच्चे के दिमाग में ऐसे विचार घुसपैठ करने लगते हैं जिनका संबंधित कार्य से कोई संबंध नहीं है। इन विचारों की परिधि सीमित होती है लेकिन वे किसी प्रश्न पत्र का उत्तर देने की प्रक्रिया को बुरी तरह अस्त–व्यस्त कर सकते हैं। परीक्षाओं के प्रति बेचौन विद्यार्थी अपने खराब प्रदर्शन की आशंका से घिरा रहता है, वह यही सोचता रह जाता है कि दूसरों का प्रदर्शन कैसा होगा और शिक्षक उसके प्रदर्शन को कैसे आकेंगे। इन सारी दखलंदाजियों को देखते हुए यह हैरानी की बात नहीं है कि वह अपनी परीक्षाओं में अच्छा प्रदशर्न नहीं कर पाता है। प्रारंभिक शोधों से पता चलता है कि दूसरों के मुकाबले कुछ विद्यार्थी परीक्षाओं की उद्विग्नता की ज्यादा आशंका में रहते हैं।

मगर महत्वपूर्ण बात यह है कि परीक्षा–मुक्त परिस्थितियों में वे भी वैसा ही प्रदर्शन करते हैं जैसा अन्य विद्यार्थी करते हैं। इस क्षेत्र में संभवतः सबसे ज्यादा काम मनोवैज्ञानिक इर्विन सैरेसन ने किया है जिन्होंने 1950के दशक से '80के दशक तक परीक्षा संबंधी उद्विग्नताओं पर शोध किया था। अपने एक अध्ययन में उन्होंने विद्यार्थियों में परीक्षा संबंधी उद्विग्नता को कम करने का प्रयास किया। उन्होंने बच्चों को दिलासा दी (फिक्र मत करो; तुम बढ़िया करोगे) और उन्हें सौंपे गए काम पर ध्यान केंद्रित करने के लिए बार–बार उकसाया ('बस समस्या पर ध्यान लगाओ; ध्यान भटकने मत दो')। सैरेसन ने पाया कि परीक्षाओं में बच्चों के प्रदर्शन को सुधारने में पहली वाली पद्धति दूसरी पद्धति के मुकाबले कम कारगर रही। यानी बच्चों को सहज शांत रहने की दिलासा देने के मुकाबले उनको बार–बार ध्यान केंद्रित करने में मदद देने का तरीका ज्यादा कारगर पाया गया। उनके नतीजे इस धारणा को पुष्ट करते हैं कि परीक्षा संबंधी बेचौनी वास्तव में तनाव–थकान को पैदा नहीं करती बल्कि इससे दिमाग भटकने लगता है।

परंतु दुर्भाग्यवश, तनाव और थकान विद्यार्थियों के जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा होते हैं। भारत में विद्यार्थी बहुत कम उम्र से ही बहुत जल्दी–जल्दी परीक्षाओं से जूझने लगते हैं। उन पर मनमानी कसौटियों के अनुसार प्रदर्शन करने का लगातार दबाव बना रहता है। भारतीय मनोचिकित्सकों ने इस परिघटना (जो मुख्यतः मध्यवर्गीय परिघटना है) पर शोध करते हुए पाया है कि स्कूल में विफलता के भय की वजह से मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, और यहां तक कि आत्महत्या की संख्याओं में भी तेज इजाफा हुआ है।

खुशी बनाम डर

हाल ही में किए गए एक अध्ययन से चंडीगढ़ के शहरी, मध्यवर्गीय, आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों के दैनिक जीवन और भावनाओं की छोटी सी झलक मिली है। इस अध्ययन में अनुभवों की सेम्पलिंग नाम की

एक रोचक तकनीक का सहारा लिया गया था। सुमन वर्मा, दीपाली शर्मा और रीड लार्सन ने सौ विद्यार्थियों को एक–एक अलार्म घड़ी दी जो हफ्ते भर तक दिन में कभी भी बजने लगती थी। जब भी अलार्म बजता तो विद्यार्थी को कई चीजें दर्ज करनी होती थीं।

मसलन, उसे ये लिखना पड़ता था कि वह कहां है, वह क्या कर रही/रहा है, क्या उस समय उसकी इच्छा कहीं और होने की होती थी, और विभिन्न पैमानों पर वह कैसा महसूस कर रहा/रही थी (जैसे खुश–दुखी, उत्साही–चिड़चिड़ा, वगैरह)। इस शोध के नतीजे काफी दिलचस्प रहे। विद्यार्थियों ने अपना लगभग एक तिहाई समय स्कूल के कामों पर लगाया (जिसमें कक्षा में बिताया समय, होम वर्क, ट्यूशनों का समय शामिल था), एक तिहाई से कुछ ज्यादा समय आराम करने में (टेलीविजन, संगीत, गप–शप और खेल कूद, इसी क्रम में!) और एक तिहाई से कुछ कम समय अपनी पालन–पोषण संबंधी गतिविधियों (मुख्यतः खाने–पीने) में बिताया।

इन तीनों अवधियों के दौरान उनकी भावनात्मक अवस्थाओं में एक स्पष्ट फर्क था। स्कूली काम से संबंधित गतिविधियों के दौरान विद्यार्थी कम खुश, कम शांत आरै कम उत्साहित रहते थे। इसी दौरान वे ज्यादा अकेलापन, निराशा और चिंतित भी महसूस करते थे। उदाहरण के लिए, उन्होंने बताया कि वे 'बहुत बोर, मुझे पढ़ना है, पढ़ना और पढ़ना है', 'थका हुआ, स्कूल में बहुत काम करना पड़ा', 'चिड़चिड़ा, मुझे परीक्षा की वजह से सुबह–सुबह उठना पड़ा' और 'चिंतित, मैं गणित की परीक्षा के लिए तैयार नहीं था/थी।' विद्यार्थियों ने यह भी बताया कि वे अपने काम पर सबसे ज्यादा ध्यान तब देते थे जब वे खुश होते थे। उनको लगता था कि ऐसी स्थिति में वे खुद गतिविधि चुनते थे और कहीं और होने की इच्छा नहीं रखते थे। *शोधकर्ताओं का निष्कर्ष था कि होम वर्क न कर पाने के कारण सजा का डर स्कूली बच्चों में तनाव का एक मुख्य स्रोत होता है*और 'स्कूली शिक्षा में सीखने और सकारात्मक भावनात्मक अनुभवों के बीच संतुलन जरूर होना चाहिए।'

तनाव उर्फ शेर का सामना!

एक बच्चा राह किनारे स्कूल की तरफ जा रहा है। आसपास बड़ी–बड़ी घास है। अचानक एक शेर छलांग लगाता है और उसके सामने पगडंडी पर आकर बैठ जाता है। वह गुर्राते हुए अपने होंठों पर जीभ फिरा रहा है। लड़का सन्न रह जाता है। उसका शरीर एकदम मानो सुन्न पड़ जाता है। उसको पता भी नहीं चलता और उसका शरीर बिजली की रफ्तार से या तो इस खतरे से निपटने के लिए या उससे भागने के लिए खुद को तैयार कर लेता है।

जिस क्षण इस खतरे का अहसास होता है उसी क्षण उसके भीतर एड्रिनलिन नाम का एक हार्मोन भारी तादाद में उसके खून में बहने लगता है। इससे उसकी मांसपेशियों को ज्यादा ऑक्सीजन वाला खून मिल जाता है जिससे उसे खतरनाक शेर से बचने में मदद मिलती है और रक्त प्रवाह पाचन जैसे गैर–अनिवार्य तंत्रों की ओर कम जाने लगता है। दूसरी तरफ मस्तिष्क में उच्चतर ध्यानाकर्षण और फोकस से संबंधित न्यूरल नेटवर्क सक्रिय हो उठते हैं।

इसी समय बच्चे की देह में एक तुलनात्मक रूप से धीमी प्रक्रिया भी शुरू होती हैः कॉर्टिज़ॉल नाम का एक हार्मोन वसा एवं मांसपेशियों में से ऊर्जा पैदा करने के लिए रक्त प्रवाह में दाखिल हो जाता है। ये प्रक्रिया पहली, ऊर्जा सघन प्रक्रिया में इस्तेमाल हुई ऊर्जा की भरपाई करने के लिए शुरू होती है। यह प्रक्रिया खतरा गुजर जाने के पश्चात पहली प्रक्रिया से शरीर को वापस सामान्य अवस्था में लाने का काम करती है। इसी बीच, मस्तिष्क में रक्त कॉर्टिजॉल के उच्चतर स्तर को कॉर्टिज़ॉल के प्रति खासतौर से संवेदनशील रिसेप्टर पकड़ लेते हैं – और ये रिसेप्टर भी हमारे परिचित मित्र हिपोकैम्पस में ही केंद्रित रहते हैं।

ये कोई इत्तेफाक की बात नहीं है। हिपोकैम्पस स्मृतियों को दर्ज करने का काम करता है। वह शेर के साथ इस मुठभेड़ की शक्तिशाली छवियों को दर्ज कर लेता है ताकि बच्चा अगली बार इस पगडंडी से भूल कर भी न गुजरे। और अंत में, जब कॉर्टिज़ॉल स्तर खून में एक निश्चित मात्रा पर पहुंच जाता है तो

मस्तिष्क एक थर्मोस्टेट की तरह इसके उत्पादन को 'बंद' कर देता है और सब कुछ सामान्य अवस्था में लौट आता है। देखा आपने कि सामान्य मानवीय तनाव प्रतिक्रिया तंत्र कितनी खूबसूरती से रचा गया है!

खैर, ऐसी संभावना बहुत कम है कि स्कूल जाते हए बच्चों का सामना कभी किसी शेर से हो। हां, इसकी काफी ज्यादा संभावना है कि वह कोई परीक्षा देने जा रहा हो, या अपना होमवर्क पूरा न कर पाने के कारण आज वह सुबह–सुबह डांट–डपट और सजा की उम्मीद के साथ स्कूल जा रहा हो। ये परिस्थितियां जीवनघाती तो नहीं हैं लेकिन बच्चे के शरीर में तनाव प्रतिक्रिया जरूर पैदा कर सकती हैं। ऐसे में, उसके खून में कॉर्टिज़ॉल का उच्चतर स्तर इस बात की आशंका का परिणाम है कि क्या होने वाला है। आजकल तो बहुत सारे विद्यार्थियों का जीवन निम्नस्तरीय तनावों की एक शृंखला से भरा रहता है जो खून में बार–बार कॉर्टिज़ॉल की मात्रा को थोड़ा–थोड़ा बढ़ा देते हैं। इन क्रियाओं का कुल नतीजा ये होता है कि मस्तिष्क 'थर्मोस्टेट' तंत्र की सीमा ऊपर उठा देता है जिससे]]न में कॉर्टिज़ॉल की उच्चतर मात्राएं बहने लगती हैं। इससे खून में कॉर्टिज़ॉल की मात्रा हमेशा सामान्य से ज्यादा रहने लगती है और आगे चलकर हाइपरटेंशन, अलसर, हृदय रोग और अन्य चिकित्सकीय विकार पैदा होते हैं।

तनाव और याद्दाश्त

शरीर या मस्तिष्क के लिए तनाव अच्छा नहीं होता और बच्चों की शैक्षणिक सफलता के लिए तो कतई फायदेमंद नहीं है। तनावपूर्ण स्थितियों के स्मृति संबंधी लाभों के पीछे जो बात कही गई थी उससे कुछ भ्रम पैदा हो सकता है। मैंने जिक्र किया था कि कॉर्टिज़ॉल का स्तर बढ़ने से हिप्पोकैम्सस सक्रिय हो जाता है और स्मृतियों को ज्यादा अच्छी तरह दर्ज करने लगता है। और क्योंकि हमारे स्कूलों में याददाश्त ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण मान ली गई है इसलिए क्या ये कहा जा सकता है कि तनाव बच्चों के लिए 'अच्छा' होता है क्योंकि इससे यादें ज्यादा मजबूत हो जाती हैं? जी नहीं, हजार बार नहीं। पहली बात, इस प्रक्रिया से गहरे तौर पर प्रभावित होने वाली स्मृति एक तरह की क्षैतिज स्मृति होती है (संभवतः इसलिए क्योंकि खतरे का स्थान कितना महत्वपूर्ण है) और इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि इससे गणित या इतिहास जैसे स्कूली विषयों में भी बच्चे की याददाश्त अच्छी हो जाएगी।

दूसरी बात, इस आशय का भी कोई साक्ष्य नहीं है कि तनावपूर्ण घटना से पहले जो तनाव पैदा हुआ था वह याद्दाश्त में कोई मदद देगा। उच्चतर कॉर्टिजॉल स्तर से याद्दाश्त बढ़ती है जिसके चलते आप अगली बार वैसी ही स्थिति में पड़ने पर खतरे से आसानी से बच पाते हैं, लेकिन जिन परिस्थितियों में केवल आशंका से ही तनाव पैदा हो जाता है, वहां कॉर्टिजॉल ज्यादा कुछ नहीं कर पाता। भला आप भविष्य को ज्यादा अच्छी तरह कैसे याद रख पाएंगे?! तीसरी और सबसे अहम, बढ़ते मस्तिष्क के बारे में किए गए ताजा शोधों से पता चलता है कि तनाव और कॉर्टिजॉल के तत्संबंधी उच्च स्तर से वास्तव में हिप्पोकैम्पस के बहुत महत्वपूर्ण तत्व नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार, लंबे दौर में हमारी याद्दाश्त और सीखने की सामर्थ्य कमजोर पड़ने लगती है।

तनाव की सामाजिक वजहें

बच्चों में तनाव और बेचौनी सिर्फ शैक्षणिक परिस्थितियों से ही पैदा नहीं होती। संगी–साथियों द्वारा छोड़ दिए जाने जैसे सामाजिक तनाव या, मसलन, अपने मां–बाप के बीच लड़ाई–झगड़ों को देखने से पैदा होने वाले तनाव भी उतने ही दर्दनाक रहते हैं। कुल मिलाकर, बच्चे के सामने ऐसे बहुत सारे जोखिम रहते हैं जो उसके खुशहाल, स्वस्थ बचपन को अस्त–व्यस्त कर देते हैं। इन जोखिमों को हम निम्नलिखित श्रेणियों में बांट सकते हैंरू

- मनोजैविक एवं ज्ञानात्मक कारक, जैसे अति सक्रियता, ध्यान न लगा पाना और सामाजिक संबंधों को समझ पाने में मुश्किल और सीखने में कठिनाइयां पैदा हो जाना।
- कठोर अनुशासन या समस्याप्रद संबंधों से पारिवारिक कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं।
- परिवेश से जुड़े कारक, जैसे खतरनाक पड़ोस और समाज विरोधी संगी–साथी।
- संगी–साथियों के साथ मुश्किल संबंध, जैसे धौंसबाजी और दूसरों द्वारा छोड़ दिया जाना।

- स्कूल का व्यवहार, जैसे कक्षा में प्रतिस्पर्धी माहौल, सजा के नाम पर मारपीट, लगातार औरों से तुलना किया जाना।

बचपन या किशोरावस्था में सामने आने वाली गंभीर भावनात्मक समस्याएं आमतौर पर इनमें से एक से अधिक जोखिमों का समानांतर परिणाम होती हैं। जैसा कि आप कल्पना कर सकते हैं, जहां केवल एक ही जोखिमपूर्ण कारक होता है वहां दूसरी सकारात्मक प्रक्रियाएं विद्यार्थी को ऐसी मुश्किलों से पार पाने में मदद दे सकती है। अगर परिवार और स्कूल का माहौल मददगार हो तो बच्चा, उदाहरण के लिए, डिकलेक्सिक होने जैसी समस्याओं से छटकारा कारा पा सकता है। या, अगर बच्चे के अच्छे यार–दोस्त हैं तो वह स्कूल की पढ़ाई–लिखाई के दबाव से परेशान होते हुए भी मां–बाप के तलाक के असर को आसानी से जब्त कर जाएगा।

लेकिन जिन विद्यार्थियों के सामने एक साथ कई तरह के जोखिमपूर्ण कारक रहते हैं, वे स्थायी भावनात्मक या व्यवहारगत समस्याओं के शिकार हो सकते हैं। ऐसे बच्चे अवसाद और उद्विग्नता संबंधी विकारों से घिर सकते है। वे कई ऐसे व्यवहार संबंधी विकारों के शिकार भी बन सकते हैं जिनके लिए शिक्षकों और अभिभावकों को पेशेवर विशेषज्ञों की जरूरत पड़ सकती है।

तनाव और वर्गीय विषमताएं

बच्चे की भावनात्मक अस्थिरता के मूल कारण को समझने से हमें न केवल उचित समाधान मिल पाता है बल्कि हमें इस बात का अंदाजा लगाने में भी मदद मिलती है कि क्या गड़बड़ी हो सकती है और उसे कैसे रोका जा सकता है। जोखिमपूर्ण कारकों से कई स्तरों पर लगातार घिरे रहने वाले बच्चों का एक समूह गरीब परिवारों के बच्चों का होता है। उदाहरण के लिए, अल्प आय परिवारों के बच्चों को घर में उतना बौद्धिक उद्दीपन नहीं मिलता जितना मध्यवर्गीय या उच्च आयवर्गीय बच्चों को मिलता है। इससे अल्प आय परिवारों के बच्चों की प्रज्ञात्मक/बौद्धिक बढ़त एवं विकास संबंधी बढ़त पर बुरा असर पड़ता है।

तुर्की, चीन, वियतनाम, ब्राजील, जमैका, दक्षिण अफ्रीका में गरीब परिवारों पर किए गए अध्ययनों में दिखाया गया है कि अगर मांओं को अपने बच्चों के साथ ज्यादा असरदार ढंग से बोलने और खेलने के लिए प्रशिक्षित किया जाए तो बच्चे के मौखिक सामर्थ्य, आईक्यू और स्कूल के भीतर प्रदर्शन में उल्लेखनीय सुधार आ जाता है। दूसरे बच्चों के मुकाबे गरीबी में पले बच्चों के सामने तनावपूर्ण जीवन घटनाओं और रोजमर्रा की समस्याओं का स्तर भी बहुत ज्यादा होता है इसलिए उनके सामने ज्यादा भावनात्मक कठिनाइयों की भी आशंका हो सकती है। एक बढ़ते बच्चे के लिए भावनात्मक रूप से अस्वस्थ माहौल वह होता है जो उसकी सुरक्षा के लिए आशंका पैदा करता है, जो हिंसक या उत्पीड़न भरा है, अस्त–व्यस्त और अनुमानों के परे है – और, दुर्भाग्य से गरीबी इनमें से बहुत सारे जोखिमों को बच्चे के जीवन में ले आती है।

अगर गरीब बच्चां का जीवन गंभीर रूप से अस्त–व्यस्त न हो तो भी गरीब बच्चों को अपने जीवन में वयस्कों के हाथों ज्यादा मारपीट झेलनी पड़ती है, उनके शिक्षक ज्यादा निरंकुशवादी रवैया अपनाते हैं और उनसे प्रायः ऐसे सवाल नहीं पूछते जिनके वे आसानी से जवाब दे सकें। हालांकि आप आसानी से समझ सकते हैं कि गरीबी में पलने वाले बच्चों को भावनात्मक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है लेकिन आपको ये जानकर हैरानी हो सकती है कि संपन्न परिवारों के बच्चों के सामने भी भावनात्मक तनाव कम नहीं होते। आगे हम ये देखेंगे कि कि भावनात्मक स्वास्थ्य या भावनात्मक परिपक्वता क्या होती है और अपने विद्यार्थियों में इसे पैदा करने के लिए शिक्षक क्या कर सकता है।

भावनात्मक परिपक्वता विकसित करना

मनोवैज्ञानिकों ने भावनात्मकता के जिन आयामों का अध्ययन किया है उनमें भावनात्मक उत्तेजना और नियमन की सामर्थ्य दो महत्वपूर्ण आयाम हैं। ये समझना मुश्किल नहीं है कि उत्तेजना और नियमन, दोनों ही दुख और गुस्से जैसी नकारात्मक भावनाओं के मामले में ज्यादा प्रासंगिक होते हैं और नियमन ऐसे बच्चों के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण होता है जिनमें उच्च भावनात्मक उत्तेजना की प्रवृत्ति होती है। उत्तेजना और

नियमन को आप कैसे मापेंगे, खासतौर से बच्चों के मामले में? सबसे आम पद्धति यह है कि बच्चों से सवाल पूछे जाएं और उनके जवाबों को वास्तविकता का सटीक प्रतिबिंब माना जाए। स्व–रिपोर्ट पद्धतियां (सेल्फ रिपोर्ट) अलग तरह की विधि होते हैं।

नैन्सी ने जेफ्री ल्यू और स्री उन्तारी पिदादा के साथ मिलकर इंडोनेशियाई बच्चों के एक समूह में भावनात्मकता का अध्ययन किया था। इन मनोवैज्ञानिकां ने भावना की सघनता, नियंत्रण की क्षमता और सामाजिक क्रिया–कलापों को आंकने का प्रयास किया। इसमें शिक्षकों ने अपने विद्यार्थियों, मां–बाप ने अपने बच्चों को और विद्यार्थियों ने एक दूसरे को इन कसौटियों पर रेटिंग दी थी। अभिभावकों और शिक्षकों के बयान अकसर इस तरह के थे, 'मेरा बच्चा/मेरी बच्ची अपने आसपास की चीजों पर बहुत भावनात्मक प्रतिक्रिया देता/देती है', 'अगर हम कह देते हैं तो ये बच्चा/बच्ची नई गतिविधियों में दाखिल होने से पहले इन्तजार कर सकता/सकती है', 'अगर इस बच्चे को खेल खत्म होने से पहले घर लौटने को कहा जाए तो वह बहुत गुस्सा हो जाता/जाती है' 'मेरा बच्चा/मेरी भावनात्मक परिपक्वता विकसित करना

मनोवैज्ञानिकों ने भावनात्मकता के जिन आयामों का अध्ययन किया है उनमें भावनात्मक उत्तेजना और नियमन की सामर्थ्य दो महत्वपूर्ण आयाम हैं। ये समझना मुश्किल नहीं है कि उत्तेजना और नियमन, दोनों ही दुख और गुस्से जैसी नकारात्मक भावनाओं के मामले में ज्यादा प्रासंगिक होते हैं और नियमन ऐसे बच्चों के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण होता है जिनमें उच्च भावनात्मक उत्तेजना की प्रवृत्ति होती है। उत्तेजना और नियमन को आप कैसे मापेंगे, खासतौर से बच्चों के मामले में? सबसे आम पद्धति यह है कि बच्चों से सवाल पूछे जाएं और उनके जवाबों को वास्तविकता का सटीक प्रतिबिंब माना जाए। स्व–रिपोर्ट पद्धतियां (सेल्फ रिपोर्ट) अलग तरह की विधि होते हैं।

नैन्सी ने जेफ्री ल्यू और स्री उन्तारी पिदादा के साथ मिलकर इंडोनेशियाई बच्चों के एक समूह में भावनात्मकता का अध्ययन किया था। इन मनोवैज्ञानिकां ने भावना की सघनता, नियंत्रण की क्षमता और सामाजिक क्रिया–कलापों को आंकने का प्रयास किया। इसमें शिक्षकों ने अपने विद्यार्थियों, मां–बाप ने अपने बच्चों को और विद्यार्थियों ने एक दूसरे को इन कसौटियों पर रेटिंग दी थी। अभिभावकों और शिक्षकों के बयान अकसर इस तरह के थे, 'मेरा बच्चा/मेरी बच्ची अपने आसपास की चीजों पर बहुत भावबच्ची नए लोगों के सामने बहुत शर्माता/शर्माती है' और 'ये बच्चा/बच्ची ऐसे लोगों को देखकर बहुत दुखी हो जाता/जाती है जो उसके जैसे भाग्यशाली नहीं हैं।'

विद्यार्थियों से कहा गया था कि वे ऐसे चार–चार दोस्तों की सूची बनाएं जिनके गुस्सा होने की सबसे ज्यादा संभावना रहती है, जिनको वे सबसे ज्यादा पसंद करते हैं और चार ऐसे बच्चों की भी सूची बनाएं जिनको वे सबसे कम पसंद करते हैं। इन 'ऊपरी चार' रेंकिंग्स के आधार पर सारे बच्चों को आंका गया ताकि प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक स्कोर ढूंढा जा सके। मनोवैज्ञानिक ये जानना चाहते थे कि सघनता और नियमन के भावनात्मक रुझान सामाजिक हैसियत और एक भिन्न संस्कृति में सहपाठियों द्वारा स्वीकार किए जाने से संबंधित हैं या नहीं क्योंकि ये बात पश्चिमी संस्कृतियों में विद्यार्थियों के संदर्भ में कई बार सामने आ चुकी थी। इसका जवाब मिला 'हां'। इस इंडोनेशियाई समूह में भी नियमन रहित बच्चे वे थे जो सामाजिक रूप से अस्वीकृत थे। जब उन्होंने बार–बार और सघन रूप से गुस्से जैसी नकारात्मक भावनाओं को व्यक्त किया तो उनको सहपाठियों ने अस्वीकार कर दिया। दूसरी तरफ, जब उन्होंने दुख या बेचैनी जैसी नकारात्मक भावनाओं को आत्मसात कर लिया तो वे शर्मीलेपन का व्यवहार करने लगे और अपने सहपाठियों से एक अलग तरह का अलगाव रखने लगे।

नकारात्मक भावनाओं से कैसे निपटें?

भावनात्मक उत्तेजना और नियमन के महत्व को देखते हुए आप यह जरूर जानना चाहेंगे कि इनमें बच्चों को वयस्क किस तरह मदद दे सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों के मुताबिक, ऐसी स्थितियों में हम नकारात्मक भावनाओं के नियमन के लिए अपने विद्यार्थियों को चार चीजें बता सकते हैं जो इस तरह हैंरू

1) उस भावना से सीधे निपटा जाए (जैसे, विश्राम तकनीक या ध्यान करना)।

2) कुछ क्षेत्रों में अपने निहित कौशल को बढ़ाने पर जोर लगाएं जिससे सकारात्मक भावनाएं पैदा होंगी।

3) देखें कि आप जिस तरह महसूस करते हैं उसके बारे में आपकी अपनी क्या सोच है।

4) अपनी सोच को आलोचनात्मक ढंग से देखें।

5) आप जिस स्थिति में हैं अगर उससे आपकी मानसिक शांति पर दबाव पड़ रहा है तो उस स्थिति को बदलने के लिए कदम उठाएं।

पहले दोनों विकल्प काफी स्पष्ट हैं लेकिन बाद वाले दोनों विकल्प शैक्षिक दृष्टि से ज्यादा दिलचस्प हैं। आइए पहले तीसरे विकल्प को देखें जिसमें विद्यार्थी से ये कहा जा रहा है कि वह अपनी भावनाओं को खुद समझे।

भावनात्मक स्थिरता में इस बात का काफी महत्वपूर्ण योगदान होता है कि अपने व्यक्तित्व और सामर्थ्य के बारे में किसी विद्यार्थी की मान्यताएं कैसी हैं। सभी विद्यार्थियों को अपने स्कूली सालों में विफलताओं और संकटों का सामना करना ही पड़ता है। उदाहरण के लिए, शैक्षणिक सफलता, एथलेटिक सफलता, व्यक्तिगत संबंधों और सामाजिक सफलता के प्रसंग में।

परीक्षा में खराब प्रदर्शन करने, किसी सहपाठी द्वारा अस्वीकार कर दिए जाने या किसी शिक्षक द्वारा दंडित किए जाने जैसे नकारात्मक अनुभवों की स्थिति में वे कैसे सामान्य होते हैं और किस तरह अपनी मंजिल की तरफ बढ़ना जारी रखते हैं, इस सवाल की कुंजी संभवतः इस बात में है कि विफलता या इन उतार–चढ़ावों को क्या अर्थ दिया जा रहा है। जब बच्चा विफल होता है तो स्वाभाविक रूप से यह मान लिया जाता है कि कुछ बदलावों की जरूरत है। ये बदलाव अगली बार और कठोर प्रयास करने के रूप में या अलग ढंग से काम करने के रूप में हो सकता है। अगर किसी विद्यार्थी को लगता है कि इस तरह का बदलाव संभव है तो वह उस बदलाव के लिए पूरा जोर लगाएगा और 'एक बार फिर कोशिश करेगा।'

लेकिन अगर उसे यह लगता है कि उसके सामर्थ्य और/या उसके व्यक्तित्व में कोई तब्दीली नहीं हो सकती तो वह रक्षात्मक ढंग से प्रतिक्रिया देगा। वह उस 'ज्ञान' से निपटने का प्रयास करेगा जो इस विफलता से उसे अपनी सीमाओं के बारे में मिला है। इस प्रकार, किसी विफलता या सदमे/झटके को एक तरफ परिवर्तन के लिए एक चुनौती के रूप में और दूसरी तरफ विनाशकारी और लिहाजा ऊर्जा चूस लेने वाली घटना के रूप में भी देखा जा सकता है। इससे यह तय होता है कि कोई विद्यार्थी ऐसी स्थिति में निष्क्रिय, रक्षात्मक या सक्रिय, किस तरह की प्रतिक्रिया देगा, वह अपना समय खुद को साबित करने में लगाएगा या सीखने के लिए नई चुनौतियों की प्रतीक्षा करेगा। इससे उसके स्कूली जीवन की भावनात्मक गुणवत्ता निर्धारित होती है।

हमें अपने विद्यार्थियों को यह समझने में मदद देनी चाहिए कि उनका प्रदर्शन सीखने का एक जरिया है, सीखना प्रदर्शन का जरिया नहीं है। शिक्षक के नाते अपने विद्यार्थियों की गलतियों या कमजोर प्रदर्शन पर हम जैसी प्रतिक्रिया देंगे उससे बहुत भारी फर्क पड़ेगा। हो सकता है हम खुद भी प्रदर्शन (चाहे वह होम वर्क के मामले में हो, परीक्षाओं, असाइनमेंट्स या प्रस्तुतियों के बारे में हो) को अपने आप में एक लक्ष्य मानते हों, उसे विद्यार्थी के व्यक्तित्व का कुल योग मानते हों ,जबकि हमें उसको सुधार के लिए एक बहुमूल्य मार्गदर्शन के रूप में ही देखना चाहिए। लिहाजा, अगर हम यह देखते हैं कि हमारे विद्यार्थी भी प्रदर्शन और विफलता के बारे में वैसे ही विश्वास रखते हैं जैसे हम रखते हैं तो ये हैरानी की बात नहीं होनी चाहिए।

आइए अब भावनात्मक नियमन से संबंधित चौथे सुझाव – भावनात्मक रूप से तनावपूर्ण स्थिति में बदलाव – पर विचार करें। बेशक, किसी तनावग्रस्त विद्यार्थी को ये सुझाव देना बेतुका होगा कि वह खुद 'अपनी स्थितियों को बदले'। लेकिन स्कूल और शिक्षक उस वातावरण को निश्चित रूप से बदल सकते हैं जिसमें उनके विद्यार्थी काम कर रहे हैं। रॉबर्ट रोज़र ने कक्षा और स्कूल के स्तर पर चार क्षेत्रों में सुधार का सुझाव दिया हैरू पाठ्यचर्या, सामर्थ्य, समुदाय और देखभाल।

- ✓ □ पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जो नाना प्रकार की पृष्ठभूमियों से आए विद्यार्थियों के अनुकूल हो और जिसमें परस्पर मिल कर सीखने और क्रमिक, संभव लक्ष्यों के लिए जगह हो।
- ✓ □ शिक्षकों को प्रत्येक विद्यार्थी को सामर्थ्य का एक स्तर हासिल करने, सीखने के दौरान गलतियों को सहज स्वीकार करने और हर चीज को सफलता और विफलता की कसौटी पर न देखने के लिए तैयार करना चाहिए।
- ✓ □ विद्यार्थियों को स्कूल समुदाय के भीतर निर्णय लेने के अवसर देने चाहिए ताकि वे खुद को महत्वपूर्ण और अपने स्कूल से 'जुड़ा हुआ' महसूस कर सकें।
- ✓ □ विद्यार्थियों को एक दूसरे के साथ और वयस्कों के साथ निकट संबंध बनाने के अवसर दिए जाने चाहिए। इसके लिए संभवतः स्कूल के भीतर छोटे–छोटे शैक्षिक समूह भी बनाए जा सकते हैं।

□ पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जो नाना प्रकार की पृष्ठभूमियों से आए विद्यार्थियों के अनुकूल हो और जिसमें परस्पर मिल कर सीखने और क्रमिक, संभव लक्ष्यों के लिए जगह हो।

□ शिक्षकों को प्रत्येक विद्यार्थी को सामर्थ्य का एक स्तर हासिल करने, सीखने के दौरान गलतियों को सहज स्वीकार करने और हर चीज को सफलता और विफलता की कसौटी पर न देखने के लिए तैयार करना चाहिए।

□ विद्यार्थियों को स्कूल समुदाय के भीतर निर्णय लेने के अवसर देने चाहिए ताकि वे खुद को महत्वपूर्ण और अपने स्कूल से 'जुड़ा हुआ' महसूस कर सकें।

□ विद्यार्थियों को एक दूसरे के साथ और वयस्कों के साथ निकट संबंध बनाने के अवसर दिए जाने चाहिए। इसके लिए संभवतः स्कूल के भीतर छोटे–छोटे शैक्षिक समूह भी बनाए जा सकते हैं।

स्वाभिमान – पक्ष और विपक्ष

1970 के दशक के शुरुआती सालों से शोध पत्रिकाओं में स्वाभिमान के बारे में यानी कोई व्यक्ति अपने आपको कैसे आंकता है, इसके बारे में 15000 से ज्यादा लेख छप चुके हैं। शिक्षकों को ये समझाया जा रहा था कि उच्च स्वाभिमान से स्कूल में बच्चों का प्रदर्शन बेहतर होगा। स्वाभाविक है कि शिक्षक और अभिभावक आलोचना की बजाय बच्चों की सराहना करने, और अधिक सराहना की सलाह देने में जुट गए... और हजारों शिक्षकों ने इस सलाह को पूरे उत्साह से अपने व्यवहार में उतार लिया (मुख्य रूप से पश्चिमी समाजों में)।

स्वाभिमान के बारे में समझने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस अवधारणा में सटीकता की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी व्यक्ति में बहुत सारे सकारात्मक गुण और उसके पास बहुत सारी उपलब्धियां हो सकती हैं और संभव है इसके बाद भी उसका स्वबोध दुर्बल हो जबकि दूसरी तरफ कोई व्यक्ति हो सकता है जो किसी भी क्षेत्र में समर्थ या प्रतिभाशाली न हो लेकिन इसके बाद भी उसका स्वाभिमान बहुत ऊंचा हो। मुद्दा यह है कि स्वाभिमान अपने बारे में कोई यथार्थ नहीं बल्कि सिर्फ एक धारणा होती है।

इन सारे सालों के दौरान बहुत सारे अध्ययन स्वाभिमान और परिणामों के बीच गहरा संबंध दिखाने में पूरी तरह नाकामयाब साबित हुए। मनोवैज्ञानिकों और आम लोगों द्वारा स्वाभिमान के इस अतिउत्साही गौरवगान के हल्ले में इन नकारात्मक परिणामों को दफन कर दिया गया क्योंकि सबको यही लग रहा था कि लोगों में चहुंमुखी स्वाभिमान लाभदायक परिणाम और फलस्वरूप एक बेहतर समाज को जन्म देगा।

मनोवैज्ञानिक रॉय बाऊमिस्टर ने स्वाभिमान के बारे में बढ़ा–चढ़ाकर की गई बातों की आलोचना की है। वे कहते हैं–

"लिहाजा, भारी व्यक्तिगत निराशा के साथ मैं ये दर्ज कर रहा हूं कि स्वाभिमान आंदोलन के उत्साहपूर्ण दावे ज्यादातर हमारी सुंदर कल्पनाओं से लेकर आंख में धूल झोंकने की हद तक हवाई रहे हैं। स्वाभिमान के प्रभाव छोटे, सीमित रहे हैं और वे हमेशा अच्छे ही पाए गए हों, ऐसा नहीं है। बेशक,

यहां–वहां कुछ लोग अपने न्यून स्वाभिमान की वजह से खराब प्रदर्शन करते पाए जा सकते हैं लेकिन यह भी सच है कि बहुत सारे लोग केवल इसीलिए कहीं नहीं पहुंच पाते क्योंकि उनका स्वाभिमान बहुत ऊंचा था और ज्यादातर समय स्वाभिमान आश्चर्यजनक रूप से मामूली असर ही डालता है...। उदाहरण के लिए, मेरे विचार में अगर हम सब एक दूसरे के प्रति थोड़ा और सौम्य होते तो ये दुनिया ज्यादा बेहतर जगह होती। लेकिन ये तो बहुत कठिन हैरू हम सबको परिवर्तन के लिए खुद को अनुशासित करना पड़ता। इसके विपरीत स्वाभिमान का रास्ता अपने आचरण का बदलने के कठोर काम से बच निकलने और बस ये महसूस करते रहने का छलावा देता है कि हम पहले से ही सौम्य हैं। इससे दुनिया सुंदर होने वाली नहीं है।"

इस आंदोलन में मनोवैज्ञानिकों को कई बड़ी समस्याएं दिखाई दी हैं जिनका सार–संकलन नीचे दिया गया है।

- "लिहाजा, भारी व्यक्तिगत निराशा के साथ मैं ये दर्ज कर रहा हूं कि स्वाभिमान आंदोलन के उत्साहपूर्ण दावे ज्यादातर हमारी सुंदर कल्पनाओं से लेकर आंख में धूल झोंकने की हद तक हवाई रहे हैं। स्वाभिमान के प्रभाव छोटे, सीमित रहे हैं और वे हमेशा अच्छे ही पाए गए हों, ऐसा नहीं है। बेशक, यहां–वहां कुछ लोग अपने न्यून स्वाभिमान की वजह से खराब प्रदर्शन करते पाए जा सकते हैं लेकिन यह भी सच है कि बहुत सारे लोग केवल इसीलिए कहीं नहीं पहुंच पाते क्योंकि उनका स्वाभिमान बहुत ऊंचा था और ज्यादातर समय स्वाभिमान आश्चर्यजनक रूप से मामूली असर ही डालता है...। उदाहरण के लिए, मेरे विचार में अगर हम सब एक दूसरे के प्रति थोड़ा और सौम्य होते तो ये दुनिया ज्यादा बेहतर जगह होती। लेकिन ये तो बहुत कठिन हैरू हम सबको परिवर्तन के लिए खुद को अनुशासित करना पड़ता। इसके विपरीत स्वाभिमान का रास्ता अपने आचरण का बदलने के कठोर काम से बच निकलने और बस ये महसूस करते रहने का छलावा देता है कि हम पहले से ही सौम्य हैं। इससे दुनिया सुंदर होने वाली नहीं है।"
- इस आंदोलन में मनोवैज्ञानिकों को कई बड़ी समस्याएं दिखाई दी हैं जिनका सार–संकलन नीचे दिया गया है।

3.3 गतिविधियां

यहां 4 गतिविधियां दी गई हैं, जिन्हें आप अपने शिक्षक की सहायता से आयोजित कीजिए।

गतिविधि– 1 चर्चा

इस सत्र के प्रमुख उद्देश्य हैं :–

1. तनाव के कारणों को समझ पाना।
2. अपनी भावनाओं से जूझने योग्य होना।

चरण 1

चार्टशीट पर दो चेहरे (जिसमें एक मुस्कुराता हुआ तथा दूसरा उदास) बनाकर छात्राध्यापकों से जानना कि –

- दोनों चेहरों में क्या अन्तर है?
- किन स्थितियों में चेहरे पर मुस्कुराहट आती है?

  (सम्भावित उत्तर : स्नेह, लाड़, प्यार, ममता ..... की स्थिति में)
- किन स्थितियों में चेहरे पर उदासी होती है?

(सम्भावित उत्तर : क्रोध, ईर्ष्या, नाराजगी, अलगाव, डर आदि की स्थिति में)

चरण 2

◆ उक्त तीनों बिन्दुओं में से प्रथम बिन्दु पर एक–दो छात्राध्यापकों से उत्तर लेना।

◆ शेष दोनों बिन्दुओं पर प्रत्येक छात्राध्यापकों से उत्तर प्राप्त करना।

◆ छात्राध्यापकों से प्राप्त उत्तरों को ब्लैकबोर्ड/चार्टशीट पर बने संबंधित चेहरे के नीचे लिखना।

चरण 3

◆ दोनों तरह के भावों की जीवन में खास भूमिका पर छात्राध्यापकों को जानकारी देना।

◆ हमारे दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में चेहरे पर मुस्कुराहट कभी–कभी लेकिन उदासी अधिक बार आती है, इस पर चर्चा करना।

◆ उदासी कम करने व मुस्कुराहट बढ़ाने के लिए क्या–क्या तरीके हो सकते हैं। चर्चा करे हुए स्पष्ट करना।

ध्यान दें :

◆ मुस्कुराहट व उदासी दोनों तरह के भाव जीवन के अंग हैं। सभी तरह के भाव जीवन के लिए आवश्यक है।

◆ उदासी कम करने के लिए प्रकट होने वाले भावों में तालमेल रखना होता है। किसी भी तरह का आदमी उदासी वाला भाव प्रकट होने पर उसे व्यक्त करने से पूर्व विचार करना कि किस प्रकार का प्रकट करना उचित होगा, उचित रूप से व्यक्त करना।

◆ उदासी को मुस्कुराहट में परिवर्तित करने के कई तरीके हो सकते हैं। जैसे यदि गुस्सा आ रहा है तो उल्टी गिरती गिनना, उस जगह से दूर चले जाना, पानी पीना, अच्छे पलों को याद करना आदि।

गतिविधि–2 विश्लेषण

चरण–1

◆ छात्र–शिक्षकों को उनके जीवन की कोई एक दुःखद घटना याद करने के लिए कहना कि आपके अभी तक के जीवन में सबसे अधिक दुःख देने वाली ऐसी घटना याद करो, जिससे तुम अीाी तक नहीं भूल पाए हों।

◆ छात्राध्यापकों को एक–एक कार्ड देकर अपनी घटना कार्ड पर लिखने को कहना।

◆ छात्राध्यापको ंको उस व्यक्ति के बारे में भी इस कार्ड पर लिखना, जिसके कारण यह दुःख उनको मिला।

◆ छात्राध्याप कों को यह भी याद कर कार्ड पर लिखने को कहना कि उस वक्त उनको कैसा लगा? (जैसे– क्रोध आया या डर लगा या ईर्ष्या हुई.....)

◆ छात्राध्याप को से कार्ड पर यह भी लिखवाना कि उन्होंने उस वक्त क्या प्रतिक्रिया की?

◆ अब यह बताएँ कि यदि वह व्यक्ति आपके सामने आ जाए तो आप क्या सजा देना चाहेंगे? दी जाने वाली सजा भी कार्ड पर लिखवाएँ।

◆ अन्त में छात्राध्यापकों को कहें कि आप उस व्यक्ति को जितनी सजा देना चाहते हैं उतना गुस्सा अपने अन्दर प्रकट करते हुए इस कागज पर गुस्सा निकालें। कागज को उतने ही गुस्से से फाड़ें और फैंक दें।

◆ सहजता के लिए यदि छात्राध्यापकों में से कोई स्वेच्छा से अपनी घटना सुनाना चाहे तो उनसे सुनें।

◆ अन्त में ऐसा बताएँ कि गुस्सा या उदासी कम करने का यह एक तरीका था। ऐसे कई तरीके हैं, जिनसे हम अपना गुस्सा या उदासी को कम कर सकते हैं।

चरण–2

◆ एकछात्राध्यापकको अपने जीवन की सबसे सुखद घटना याद करने को कहें।

◆ एक कागज व स्केच पेन देकर यह बताएं कि सुखद घटना याद करने से जो खुशी हो़ी हे, उतनी ही खुशी से इस कागज पर चित्र बनाएं और सजाएं।

◆ उस व्यक्ति को याद करने को कहें, जिससे यह खुशी मिली।

◆ उस खुशी के समय कैसा लगा? (मन प्रसन्न हुआ, हंसने की इच्छा हुई आदि)

◆ आपने उस खुशी को किस प्रकार व्यक्त किया? (मन में विचार करवाना)

◆ यदि वह व्यक्ति (जिससे खुशी मिली आपके सामने आ जाए तो क्या ईनाम देना चाहेंगे? (मन में तय करावें)

◆ छात्राध्यापकों को बताएं कि आपने जो कागज सजाया, उसे समेटकर अपने पास रख लो। यह भी बताएं कि जब भी वह व्यक्ति सामने आ जाए तो उसे यह कागज दे दें।

◆ सहजता के लिए स्वेच्छा से छात्राध्यापकों के अनुभव सुनन।

◆ आस–पास के परिवेश के यदि कोई इस प्रकार के सुखद अनुभव हों तो छात्राध्यापकों को सुनाएं।

चरण 3

◆ उक्त दोनों स्थितियों / क्रियाकलापों पर चर्चा करते हुए उदासी को मुस्कुराहट में बदलने के तरीकों की जानकारी देना।

◆ उदासी कम करने के तरीकों पर चर्चा करना।

◆ मुस्कुराहट बढ़ाने के तरीकों पर भी चर्चा करना।

गतिविधि– 3 चर्चा

चरण–1

◆ छात्राध्यापकोंसे चर्चा करना कि उक्त गतविधि से क्या सीखने को मिला?

◆ सुखद घटना की गतिविधि से क्या सीखने को मिला?

◆ दु:खद घटना की गतिविधि से क्या सीखने को मिला?

चरण–2

◆ छात्राध्यापको से जानकारी प्राप्त करना कि उदासी को मुस्कुराहट में बदलने के लिए क्या–क्या व कैसे–कैसे अभ्यास कर सकते हैं।

◆ प्रत्येक छात्राध्यापक को बोलने का अवसर देना।

चरण–3

◆ छात्राध्यापकों से जानना कि वे अपने दैनिक जीवन में इस सीख का कैसे उपयोग करेंगी?

◆ सभी को सोचने का समय देकर एक–एक से पूछना।

गतिविधि– 4 सुझाव

क्रोध–आवेश आने के समय ध्यान रखने योग्य बातें

- अपनी भावनाओं को दबाने की जगह अपने परिवार या मित्रों से उन पर बात करें।
- जब भी क्रोध आ रहा हो तो आंखे बन्द करके 1 से 10 की गिनती बोलें या मनपसन्द गाना गायें।
- लम्बी सांस लेकर हम अपने आपसे कहें कि शान्त हो जाओ।
- जिस व्यक्ति पर हमें क्रोध आ रहा हो, कुछ समय के लिए उससे दूर चले जाएं।
- हम अपने आपसे लगातार संवाद करें और उस स्थिति पर विचार करें जिससने हमें क्रोध करने को मजबूर किया।
- हर समय अपनी भावनाओं को नियन्त्रित करते रहना या हर समय अपनी भावनाओं को बिना किसी नियन्त्रण एवं लगाम के अभिव्यक्ति करते रहना ठीक नहीं है। अभिव्यक्ति और नियन्त्रण का सामंजस्य अति आवश्यक है। इसे हम वीणा के तारों का उपयोग से समझ सकते हैं। इन तारों को यदि बहुत ज्यादा कस दिया जाए तो ये टूट जाएंगे और यदि इन तारों को ढीला छोड़ दिया जाए तो सुर नहीं निकलेंगे। सुर और लय के लिए एक सही स्तर का सामंजस्य जरूरी है।

हमने जाना

- **आत्म–छवि**: लोगों में खुद की एक आदर्श छवि गढ़ने की प्रवृति होती है। ऐसी छवि गढ़ कर व्यक्ति कई बार वैसा बनने की कोशिश भी करता है। आत्म–छवि के कई हिस्से होते हैं। अपने शरीर, मन, चरित्र, भावनात्मक पक्ष के बारे में खुद का आकलन इसमें शामिल होता है। दूसरों की तारीफ भी इसमें शामिल हो जाती है।
- **आत्म–सम्मान** बोध आत्म बोध से जुड़ा हुआ है ।व्यक्ति के आत्मसम्मान की मात्रा उसके व्यवहार को प्रभावित करती है। आत्मसम्मान खुद के भीतर की सकारात्मक बातों के आत्म–स्वीकार से बनता है।

- **आत्म–सम्मान बोध के कम होने** के कई कारण हो सकते हैं। ज्यादातर कारण सामाजिक व आर्थिक हैं।
- हम विभिन्न अवसरों पर अलग–अलग भावनाओं का अनुभव करते हैं और उन्हें व्यक्त करते हैं।
- **भावनाएँ सकारात्मक और नकारात्मक** दोनों प्रकार की हो सकती हैं। क्रोध, चिड़चिड़ापन, डर, ईर्ष्या, घबराहट, खुशी, आश्चर्य, उल्लास, निराशा, संकोच, शर्म, ग्लानि आदि भावनाओं के नाम हैं। ये सभी भावनाएँ कुछ विशेष स्थितियों में तीव्रता से उभरती हैं। भावनाएँ परिवर्तनशील होती हैं। कोई एक भावना क्षणिक भी हो सकती हैं। हमारे जीवन में प्रत्येक भावना का अपना महत्व है। कोई भावना स्थाई रूप से अच्छी एवं बुरी नहीं होती है अर्थात भावनाएँ सापेक्षिक होती है।
- **हमारी भावनाएं ...**उदासी, समर्पण, संकोच, साहस, सुरक्षा, उत्तेजना, ईर्ष्या, घबराहट, चिड़चिड़ापन, लज्जा, वात्सल्य, कुण्ठा, उल्लास, स्नेह, आशा, निर्बलता, संदेह, ग्लानि, शांति, प्रेम, प्रसन्नता, क्रोध, हीनता, उतावलापन, डर, घमण्ड, शर्मीलापन, निराशा, सहानुभूति, द्वन्द्व, चिन्ता, उलझान, आक्रोश, प्रफुल्लता, असुरक्षा आदि हैं।
- शैक्षणिक संदर्भ में विद्यार्थी जो भावनाएं व्यक्त करते हैं उनको **शैक्षणिक भावनाएं** कहा जाता है।
- भावनाएं विद्यार्थियों की बहुत सारी बातों जैसे अंतःप्रेरणा, बौद्धिक सामर्थ्य, सफलता, शारीरिक स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य आदि को प्रभावित करती हैं। भावनाओं का बच्चों की अंतःप्रेरणा और बौद्धिक सामर्थ्य के साथ बहुत गहरा रिश्ता होता है और ये तीनों चीजें स्कूल में चलने वाली सारी शिक्षा का आधार होती हैं।
- स्कूल में ऐसा **वातावरण** बनाया जाए, जो लगाव भरा हो और निर्वैयक्तिक और प्रतिस्पर्धी होने की बजाय बच्चों के व्यक्तित्व को मान्यता देता हो।

अध्याय– 4: स्वयं के विकास हेतु स्वतंत्रता और अनुशासन, प्रतियोगिता–सहयोग, विश्वास–भय को जानना और समझना

4.01 परिचय
4.02 उद्देश्य
4.1 स्वतंत्रता और अनुशासन
4.2 प्रतियोगिता और सहयोग
4.3 विश्वास – भय
– अध्ययन सामग्री, गतिविधियाँ, बोध प्रश्न

4.01 परिचय

व्यक्तित्तव के निर्माण और विकास के अनेक आयाम होते हैं। ये मात्र बाह्य आचरण और व्यवहार में ही परिलक्षित नहीं होते है, बल्कि चिंतन, मनन और विचारणा में निहित होते हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और पहलुओं पर गहराई में जाकर सोचने, विचारने से हमारा विवेचनात्मक कौशल विकसित होता हैं। विवेचना करते हुए हम न केवल अपनी अवधारणात्मक समझ विकसित करते हैं, बल्कि साथ ही साथ हम अपने व्यक्तित्व में अवधारणा से उपजे गुणों को समाहित कर लेते है जो हमारी चारित्रिक विशिष्टता बनकर उभरते हैं– स्वतंत्रता और अनुशासन, प्रतियोगिता–सहयोग तथा विश्वास–भय। ये सारी अवधारणाएं शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण और असहकारी अवधारणाएं हैं।

4.02 उद्देश्य :–

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जानेगें कि :–

- अपनी चारित्रिक विशिष्टता के विकास में स्वतंत्रता और अनुशासन का क्या तात्पर्य हैं।
- हमारे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विकास में स्वतंत्रता और अनुशासन की क्या भूमिका हैं।
- अपनी चारित्रिक विशिष्टता के विकास में प्रतियोगिता सहयोग की भावना का क्या तात्पर्य हैं।
- हमारे विद्यार्थियों में प्रतियोगिता–सहयोग की भावनाओं के सहारे व्यक्तित्व विकास के अवसर कैसे प्रदान करे।
- अपनी चारित्रिक विशिष्टता के विकास में विश्वास और भय के आयामों की भूमिका क्या है।
- हमारे विद्यार्थियों में भय की भावना को दूर–दूर कैसे विश्वास का वातावरण बनाएँगे।

4.1 स्वतंत्रता और अनुशासन

स्वतंत्रता के हम सब आकांक्षी हैं। हम सभी चाहते हैं कि हमारे कार्यों, इच्छाओं और सफलता में कुछ भी बाधक न हो। यदि हमारे कार्यो को रोका जाता हैं या बीच में टोक दिया जाता हैं तो हमें बुरा लगता हैं। इसी प्रकार हमारी इच्छाओं की पूर्ति न हो और हम असफल हो जाएं, तो हम में रोष उत्पन्न होता हैं और हम कुण्ठित हो जाते हैं। अतः स्वतंत्रता हमारे जीवन में जरूरी हैं।

स्वतंत्रता विद्यार्थी और शिक्षक दोनों के लिए आवश्यक हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि बहुत अधिक बंधनकारी परिवेश में स्वयं के विचार और प्रतिभा का प्रस्फुटन सम्भव नहीं होता। प्रस्फुटन का अर्थ हैं खिलना। यदि किसी फूल को खिलने के लिये खुला और अनुकूल परिवेश नहीं दिया जाता हैं तो वो मुरझा जाता हैं। अक्सर तो वो पौधा ही समाप्त हो जाता हैं जिसमें फूल खिलता हैं। दरअसल हमारी शालाओं का काम केवल शैक्षिक रूप से श्रेष्ठ नहीं होना हैं बल्कि समग्र रूप से मानवीय व्यक्तित्वों के निर्माण में भी अपनी भूमिका का निर्वहन करना हैं।

शिक्षा एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं हैं। शिक्षा एक जीवन्त, सतत और क्रियाशील प्रक्रिया हैं जो हमारे मन, हृदय और जीवन–दृष्टि को समग्र रूप से उद्घाटित और विकसित करता हैं। इसका अर्थ यह है कि शिक्षा हमें बिना किसी विरोध या विसंगति के सामजस्य के साथ जीना सिखाती हैं। यह तभी हो सकता है जब

हमारी दृष्टि और बोध साफ हो, हम तटस्थ होकर यथार्थ को समझ सके, किसी भी घटना का युक्तिपूर्ण विश्लेषण कर सकें और हम पर कोई दबाब न हो। किसी भी प्रकार का आरोपण, राजनैतिक मत, धार्मिक अंधविश्वास या सामाजिक दुराग्रह शिक्षा की प्रक्रिया को बाधित करता हैं। स्वतंत्रता का अर्थ ही हैं बिना बाधा और आरोपण के कार्य करना।

यहां ध्यान देना हैं कि स्वतंत्रता का अर्थ मन मर्जी से स्वच्छता से कार्य करना नहीं हैं। स्वतंत्रता का अर्थ हैं अपनी स्वयं की एक ''व्यवस्था'' या ''तंत्र'' निर्मित करते हुए कार्य का सम्पादन। यहीं अनुशासन की अवधारणा का प्रवेश होता हैं। आम तौर पर स्वतंत्रता और अनुशासन को विरोधी विचार के रूप देता और समझा जाता हैं। लेकिन जे.एस. कृष्णमूर्ति और मॉण्टेसरी जैसे शिक्षाविदों में स्वतंत्रता और अनुशासन को परिपूरक माना हैं।

स्वतंत्रता और अनुशासन को एक दूसरे का विलोम समझे जाने के मुख्य कारण हैं कि अनुशासन का अर्थ माना गया हैं। नियंत्रण में कार्ये करना जबकि स्वतंत्रता का अर्थ माना गया हैं बिना किसी नियंत्रण के कार्य करना। लेकिन वस्तुतः ये दोनो एक दूसरे को काटते नहीं हैं, उन्हें एक दूसरे को पूर्ण करते। इसको समझने के लिए आवश्यक हैं कि हम नियंत्रण के तात्तपर्य को जाने। नियंत्रण दो तरह से हो सकता हैं – एक तो बाहर से तय किया गया और दूसरा हमारे भीतर से ही यह मांग उठे कि हमें नियंत्रित होकर कार्य करना चाहिए। उदाहरण के लिए चिकित्सक हमसे कहे कि हमें रोज हल्का व्यायाम करना चाहिए और हम अपनी इच्छा न हाते हुए भी मन मारकर व्यायाम करते हैं तो हमारा कार्य बाह्य निर्देश पर हो रहा हैं। लेकिन यदि हम अपनी इच्छा से अपने शारीरिक कल्याण के लिए प्रतिदिन व्यायाम करते हैं तो यह हमारा स्वनियंत्रण हुआ। स्वनियंत्रण में किया गया कार्य अनुशासित स्वतंत्रता हैं।

हम अपनी शालाओं को देखे तो पता चलता हैं कि हमारी शालाओं में अनुशासन पर ज्यादा जोर हैं, स्वतंत्रता पर कम। हमारी सारी कक्षाएं एक सी होती हैं। बच्चें कतार में एक के पीछे एक बैठते हैं। शिक्षक जैसा निर्देश देते हैं, बच्चे वैसा ही करते हैं। बच्चों को कार्य करने की कोई स्वतंत्रता नहीं हैं। शिक्षक ही तय करते हैं कि र्कान सा कार्य कैसे करना हैं। कुछ नियम होते हैं जिनका पालन करने के लिए बच्चें बाध्य हैं। इसी प्रकार शिक्षक भी एक निर्धारित पाठ्यपुस्तक पढ़ाते हैं, एक नियत् समय पर परीक्षा लेते हैं। याने शाला का पूरा कार्य पहले से ही निर्धारित हैं। न शिक्षक और न ही बच्चें अपने कार्य को चुनते हैं, न ही वे कार्य करने के अपने तरीके ढूंढ़ते हैं। ऐसी शालाएँ व्यक्तित्व के निर्माण और विकास में सहयोगी नहीं होते हैं।

शिक्षक और बच्चे दोनों को ही नियमों को आत्मसात करने के अवसर प्राप्त होना जरूरी हैं। शिक्षक अपने बच्चों की आवश्यकता के अनुसार पाठ को चुने, अपनी योजना स्वयं बनाएं, और बच्चें भी अपने कार्य को स्वयं चुने और कम से कम निर्देश से कार्यों को पूरा करें। ऐसे में सीखने का आनंद उन्हें मिल पायेगा।

अनुशाासन का तात्पर्य हैं आत्म–अनुशासन, आत्म–नियंत्रण, स्व–प्रेरणा से कार्य करना। इसका अर्थ ये हुआ कि अपने आप को किए गये कार्य के लिए जिम्मेदार मानना और उसके लिए खुद को नियंत्रित करना। कार्य शिक्षक और बच्चों के लिए इतना रूचिकर हो कि वे उत्साह के साथ कार्य को पूर्ण करने लिए प्रेरित हो।

कई बार लोग स्वतंत्रता का यह अर्थ लगा लेते हैं कि ''जो हम चाहे वही करे।'' इस संबंध में मॉण्टेसरी ने एक रोचक प्रसंग का उल्लेख किया हैं। इनकी शाला में एकबार एक महिला यह सोचकर आई कि वहां बच्चें जो चाहें करते होगें। एक बच्चे ने इस महिला से कहा, 'हम जो चाहें वही नहीं करते है, बल्कि हम जो करते हैं इसे चाहकर करते हैं।' कहने का तात्पर्य यह हुआ कि बच्चें अपने कार्य में आनंद का अनुभव करते हैं, केवल आनंदित होने के लिए कुछ भी नहीं करने लगते हैं। अतः स्वतंत्रता में कार्य करने का मतलब होता हैं सही और उचित कार्य करने की स्वतंत्रता। स्वतंत्रता से ही आत्मानुशासन, एकाग्रता, व्यक्तिगत विशिष्टता और सामाजिकता का विकास सम्भव हैं।

स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए उपर्युक्त वातावरण का निर्माण आवश्यक हैं। इसके लिए ऐसी पठन–पाठन सामग्री उपलब्ध होना चाहिए जिससे बच्चे कार्य करने के लिए स्वयं तेयार हो जाए। शिक्षक की भाषा ऐसी हो जो बच्चों को कार्य के लिए आमंत्रित करें। बच्चों की भागीदारी ज्यादा से ज्यादा हो इसकी गतिविधियां हो।

शिक्षाविद ई.एम.स्टैण्डिंग ने कहा हैं कि अनुशासन 'स्वतंत्रता का फल' हैं। अतः हम कह सकते सही अर्थों में अनुशासन तभी स्थापित हो सकता हैं जब हम कार्य करने को स्वतंत्र हो।

क्रियाकलाप–1

नीचे मार्गरेट के.टी. का एक वक्तत्य दिया गया हैं। आप 5–5 के समूह में इस कथन पर चर्चा करें। साथ ही इस कथन के आधार पर कक्षा में बच्चों की गतिविधि कैसी होनी चाहिए, उसे समूहवार लिखे और पूरी कक्षा में प्रत्येक समूह के प्रस्तुतीकरण पर विस्तार से बातचीत करें।

''जब तक अनुशासन व स्वतंत्रता का सही संतुलन नहीं होगा तब तक कुछ नहीं सीखा जा सकता–वास्तव में शिक्षण कार्य का एक बड़ा हिस्सा बच्चों में स्वतंत्र अनुशासन बनाने के लिए होना चाहिए। ऐसा अनुशासन जिसमें बच्चें को चुनने, एकाग्रता से कार्य करने और काम को पूरा करने का मौका हो। अनुशासन का मतलब यह नहीं हैं कि सभी बच्चें स्तब्ध व शांत बैठे और शिक्षक को सुनें और न ही स्वतंत्रता का मतलब हैं कि बच्चा वह करें जो उसका मन कहता हैं।

क्रियाकलाप–2

किसी भी स्कूली विषय से पाठ के अध्यापन के लिए गतिविधि तैयार करें जिसमें निम्नलिखित आधार पर स्पष्ट करें कि उक्त गतिविधि को करते हुए बच्चें कैसे स्वतंत्र अनुभव करेगें।

1. कक्षा की व्यवस्था।
2. कक्षा में उपलब्ध सामग्री के रखने की व्यवस्था।
3. बच्चों का समूह बनाना और उनसे स्वतः संचालित गतिविधि कराना।
4. निर्देश क्या और कैसे हो।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखें :–

1. स्वतंत्रता और अनुशासन से आप क्या समझते है ? कक्षा शिक्षण के संदर्भ में उत्तर दें।
2. स्वंत्रता शिक्षक के लिये आवश्यक क्यों है ?
3. स्वतंत्रता और अनुशासन में संतुलन कैसे किया जा सकता है ?
4. स्वत्रंत रूप से कार्य करने के लिए आप विद्यालय में कैसा वातावरण निर्मित करेंगे ?
5. बच्चा अपने मर्जी से कार्य करें, इसके लिए आप कैसे निर्देश देंगे । उदाहरण के साथ समझाये।

अध्ययन सामग्री1: दो शालाओं का अवलोकन- गिजुभाई

एक बार मैं एक कन्या विद्यालय में गया। चालीस से पचास के लगभग छात्राओं की कक्षा में उनके अध्यापक से मैंने पूछाः इतनी–सारी छात्राओं को कैसे सँभाल लेते हैं आप? वे बोलेः इसमें क्या हे? एक तो ये लड़कियाँ हैं, जरा–सी आँखें दिखाई या एकाध को हाथ जमाया कि बस, चुप! फिर क्या मजाल कि पूरी कक्षा में कोई गड़बड़ या चूँ–चाँ करें!

अध्यापकजी जब अपनी कक्षा के ऐसे उत्तर प्रबन्ध की बात बता रहे थे, तो वे मुस्करा रहे थे।

इस पर मैंने कहा : लेकिन यह तो भय वाली व्यवस्था हुई। अगर उन पर कोई डर न हो तो पता लगे।

अध्यापकजी बोले : पर यूँ डर न दिखाएँ तो कैसे चले! यह बारह घरों की मुसीबत शाला को सिर पर न उठा ले?

लेकिन सचमुच क्या आप ऐसा मानते हैं कि इस तरह डराने से लड़कियाँ अनुशासित हो जाती हैं? क्या सचमुच ये शान्तिम से बैठने वाली, हुकम मानने वाली, गड़बड़ न करने वाली बन जाती हैं?

यह मुझे नहीं पता। मुझको तो मेरी कक्षा से काम है। घर जाकर ये चाहे जो करें। मेरी कक्षा में अगर मैं अनुशासन न लाँऊ तो पढ़ाने के साँसे पड़ जाएँ। पढ़ाने के लिए मेरी व्यवस्था करने की यह विधि सही है, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक बार मैं एक बाल–विद्यालय में गया। तीस से चालीस लड़कों को शान्ति एवं अनुशासन के साथ घूमते–फिरते व काम–काज करते देखकर मैंने अध्यापक से पूछा : पानी के रेले जैसे इन लड़कों को आप कैसे सँभालते हैं? इनमें से एक–एक बालक एक–एक अध्यापक को रोके रखने जैसा है। मार–पिटाई कैसी करनी पड़ती है? क्या फुसलाना अनुकूल पड़ता है?

अध्यापकजी बोले : आँखें दिखाने, मार–पीट करने या फुसलाने में मेरी आस्था ही नहीं है। सच मानें तो लड़के ऊधमी हैं ही नहीं। जब इन्हें पानी का रेला ही कह दिया, तो सचमुच इनमें पानी की धारा जैसा ही बल है और इसीलिए इन्हें स्वयं व्यवस्थित किया जा सकता है। यहाँ हमने बालकों के लिए अनुकूल व रूचिकर प्रवृत्तियों की व्यवस्था की है। जिसको जो पसन्द हो, करता है, और जब इच्छा हो, तभी करता है। प्रत्येक बालक अपने मनपसन्द के काम में लगा रहता है, फिर वह भटकने, झगड़ने या मस्ती करने को खाली नहीं रहता। जब वह अपना काम करके मुक्त होता है तब वह उलटा आनन्दपूर्वक दूसरे बालकों के साथ मिलता–जुलता, मौज उड़ाता है। बच्चे एक पंक्ति में बैठे रहें, घूमें नहीं, चुपचाप पढ़ते रहें, इसे मैं अनुशासन नहीं मानता।

अब मास्टर लक्ष्मीशंकर जी को उनकी एक ही आशंका का उत्तर देना शेष रहा कि अगली कक्षा में जाने पर अगर जीवा को नुकसान होगा, तो?

अगली कक्षा की बात तो कौन जाने, पर अभी तो जबरदस्ती पढाये जाने से हाने वाला नुकसान हमारे सामने स्पष्ट रूप से विद्यमान है। अरूचिकर विषय पढ़ाने से बालक कासमय बरबाद होगा, उसके शरीर एवं मन को पीड़ा पहुँचेगी तथा शिक्षण और शिक्षक के प्रति अरूचि पैदा होगी, सो अलग! मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा पर इस तरह से अगर आक्रमण किया जाता है तो वह अपंग बन जाता है। पंगुता की वजह से आगे चलकर वह दुःखी एवं दुष्प्रवृत्ति वाला लगभग एक भयंकर आदमी बन जाता है। सोचने की बात है कि यह क्षति बड़ी क्षति है अथवा भूगोल विषय में किन्हीं दो गॉवों की पढ़ाई न करने से होने वाली क्षति बड़ी है?

अगर आगे चलकर भविष्य में जीवा अन्य विषयों का ज्ञाता बन जाएगा, उसके सामान्य ज्ञान में अगर अभिवृद्धि हुई होगी, और उसको कहीं यात्रा पर जाना होगा तो उस समय, अथवा किसी प्रसंग में जब उसको भूगोल के ज्ञान की आवश्यकता पड़ेगी तो उस समय, वह स्वंय उपयोगी साधनों का प्रबन्ध कर लेगा औरउनका समुचित उपयोग करके वांछित लक्ष्य पूरा कर लेगा। अगर मास्टर लक्ष्मीशंकर जी इन बातों को समझ कर अपनी मानसिक परेशानी को कम कर लेंगे तो अच्छी बात है, अगर नहीं करेंगे तो जाहिर है उनसे दुगुनी परेशानी जीवा को होगी और दोनों की परेशानियॉ चलती ही रहेंगी, मिटेंगी नहीं।

बोध प्रश्न–

हॉ या नहीं में उत्तर दीजिए

1. कन्या विद्यालय में 50 छात्राओं को संभालने के लिये क्या भय दिखाया जा रहा है– हॉ/नहीं
2. कन्याओं को शीघ्र संभाला जा सकता है– हॉ/नहीं
3. कन्या भय दिखाने से क्या अनुशासित हो जाती है– हॉ/नहीं
4. दूसरे बाल विद्यालय में 40 बच्चे स्वाभाविक तरीके से अध्ययन करते हैं– हॉ/नहीं
5. क्या बालकों पर अनुशासन में रखना आवश्यक है– हॉ/नहीं
6. क्या बालकों की मार पिटाई की जानी चाहिये– हॉ/नहीं

<u>खाली स्थान भरो–</u>

1. छात्र/छात्राओं को अनुशासन में रखने के लिये मार पिटाई करना..... है।

2. शिक्षक पढ़ाने की व्यवस्था में..... को आवश्यक समझते हैं।

3. बाल विद्यालय में बच्चे ..... में रहकर घूम रही है।

4. शिक्षक बच्चों की रूचि और..... पर ध्यान देते हैं।

5. बच्चें पंक्ति में बैठे रहे, घूमें नहीं, कृपया पढ़ें, इसे हम ..... नहीं मानते हैं।

नीचे दिए गए प्रश्नों का उत्तर अधिकतम 50 शब्दों में लिखिए

1. कन्या विद्यालय की सभी छात्रायें अनुशासन में रहती हैं। कोई दो विचार बताइये?

2. आपके विचार से छात्राओं को अध्यापन के लिये डराना या मय दिखाना क्या आवश्यक है?

3. "पानी के रैले" जैसे लड़कों से आप क्या समझते हैं?

4. आपके विचार से बच्चे को फुसलाकर अनुकूल वातावरण में शिक्षण करना कहां तक सार्थक है।

नीचे दिए गए प्रश्नों का उत्तर अधिकतम 150 शब्दों में लिखिए

1. पढ़ी हुई दोनों शालाओं के सम्बंध में अंतर (वातावरण सम्बंधी) बताइये।

2. कन्या विद्यालय में पढ़ने वाली छात्राओं के संबंध में एक शिक्षक की टिप्पणी "ये तो लड़कियां हैं जरा सही ऑख दिखाई बस चुप" पर अपने विचार स्पष्ट करें?

अध्ययन सामग्री 2: **स्कूल की घंटी और अनुशासन– कृष्ण कुमार**

अतएव, यदि हम स्कूल को समाज और जीवन से अलग कर देने की नीति के पिछे कोई भूल या दुर्घटना ही देखें तो इसे अपनी दृष्टि का दोष ही कहना चाहिए। स्कूल एक पुरानी संस्था है किंतु हमारी सदी में उसका जितना सुनियोजित नियंत्रण हुआ है, उतना पहले कभी नहीं था। इस नियंत्रण के अनेक क्षेत्र और स्वरूप है; अध्यापकों की नियुक्ति और उनकी सेवा की शर्तों से लेकर पाठ्यपुस्तकों के लेखन और घंटी से बच्चों की दिनचर्या के परिचालन तक स्कूल पर राज्य के नियंत्रण का दायरा है। नियंत्रण के इन विविध माध्यमों का सम्मिलित प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। कहा जाता है कि ज्यादातर नियंत्रक सुविधा के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। सुविधा इनसे अवश्य प्राप्त होती होगी, किंतु क्या सुविधा किसी राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का नीति निर्देशक सिद्धांत होना चाहिए?

मुझे आज तक ऐसे स्कूल में जाने का मौका नहीं मिला है जहां छुट्टी की घंटी बनजे पर बच्चे खुशी से शोर मचाते हुए न भागते हों। मैंने यह भी देखा है कि बड़े बच्चे घंटी बनजे पर कम शोर मचाते हैं छोटे ज्यादा। कोई 'शिक्षायी नौकरशाह' इसकी यह व्याख्या कर सकता है कि आयु बढ़ने के साथ बच्चों का समाजीकरण होता है। इस व्याख्या के पिछे यह पुरानी मान्यता काम कर रही है कि बच्चे जन्म से अराजकतावादी होते हैं। इस मान्यता के तहत बच्चों की तीव्र जिज्ञासा तथा अपने आसपास के यथार्थ को समझकर उसके मुताबिक व्यवहार करने की इच्छा को नहीं समझा जा सकता। कुछेद बच्चों को अशांत और कभी कभी अराजक बनाने के लिए उनकी शारीरिक गड़बड़ी और उन पर पड़ने वाले मानसिक दबाव जिम्मेदार होते हैं। इनमें से अनेक शारीरिक गड़बड़ियां माता–पिता की रूढ़िवादिता एवं पोषण के संबंध में अज्ञान से उत्पन्न होती हैं। मानसिक दबावों के स्रोत अध्यापकीय व्यवहार और स्कूली सभ्यता में होते हैं।

स्कूल की घंटी बच्चों के जीवन का ऐसा नियमन करती है जिससे वे अपनी नैसर्गिक रूचियों और सामर्थ्य द्वारा होने वाले नियमन की संभावना खो बैठते हैं। यह हो चुकने पर वे एक ऐसे अनुशासन के आदी हो जाते हैं जो अनुशासन नहीं, सीधे–सीधे शासन होता है। यह एक दिलचस्प **सचाई** है कि अनुशासन का यही अंतर हमें सामाजिक एवं शासकीय जीवन के बीच दिखाई देता है। हमारे सामाजिक क्रियाकलाप और विधान एक अदृश्य कार्यक्रम के अधीन घटित होते हैं जबकि सारे शासकीय कर्तव्य एक निश्चित कार्यक्रम और प्रणाली के अधीन पूरे हो पाते हैं। अनुशासन का अर्थ उस किस्म का नियंत्रण है जो पेट भर जाने पर खाना रोक देने की प्रेरणा देता है। घंटी बनजे पर भूगोल की पढ़ाई रोककर भाषा की

पढ़ाई आरंभ करने की प्रेरणा अनुशासन की अवधारणा का अच्छा खासा मजाक ही कहा जा सकता है। घंटी के जरिये बच्चे की कार्यप्रणाली और रूचि का धीरे–धीरे इतना नियमन हो जाता है कि अंततः वह किसी थोपे गए कार्यक्रम के बिना काम करने में असमर्थ हो जाता है। उसका आत्मविश्वास मर जाता है, जिम्मेदारियां एक बोझ लगने लगती हैं और रूढ़ दिनचर्या ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य और साधन बन जाती है।

अनुशासन को शासन से पृथक करने के लिए अक्सर कहा जाता है कि अनुशासन भीतर से जन्म लेता है, शासन की तरह बाहर से थोपा नहीं जाता। 'भीतर' और 'बाहर' की यह भिन्नता बहुत सहायक नहीं प्रतीत होती क्योंकि शासन की प्रभावक्षमता काफी समय तक क्रियाशील रहने पर 'भीतर' पहुंच सकती है। लंबे अरसे तक गुलाम रह चुके समाज जिस नियंत्रण से ग्रस्त या परिचालित होते हैं, वह उनके सामूहिक व्यक्तित्व में इतनी गहराई तक प्रवेश कर चुका होता है कि किसी व्यक्ति में उसे 'बाहरी' और 'भीतरी' के दायरों में बांटकर देखना संभव नहीं रह जाता। कोई व्यक्ति अनुशासित है या गुलाम, इसका पता यह जानकर किया जा सकता है कि वह व्यक्ति दूसरों की आजादी को किस रूप में और कितनी सीमा तक स्वीकार करता है। जो स्वयं गुलामी कबूल कर चुके हैं, उन्हें दूसरों की आजादी गवारा नहीं हो सकती। आदेशों और ढेर सारे नियमों से बंधे रहकर काम करने की आदत धीरे धीरे उन प्राकृतिक क्षमताओं को पूर्णतः नष्ट कर देती है जिनसे हम सामूहिक जीवन में आपसी संबंधों को संतुलन की अवस्था में रखते हैं। आदेशों के बिना भी मुस्तैदि और शांति के साथ काम करते हुए जी सकता है। किसी समाज में आजादी का स्तर पता लगाने के लिए बच्चों के प्रति वयस्क सदस्यों के दृष्टिकोण को एक कसौटी की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। जो समाज बच्चों को नियंत्रण में रखना ही उनके लिए सर्वोत्तम मानता है, उनकी निजी इच्छाओं, आदतों और काम करने के तरीकों को संदेह की निगाह से देखता है, ऐसे समाज की आजादी स्वयं बहुत संदिग्ध होती है।

स्कूल में अनुशासन की जिस अवधारणा का इस्तेमाल सामान्य तौर पर मिलता है, उसे सैन्य कहना अनुचित न होगा। वास्तव में बचपन का बहुत बड़े पैमाने पर सैन्यीकरण हो चुका है। इसका एक सबूत हम राजनेताओं की ऐसी उक्तियों में पा सकता हैं जिनमें बच्चों को कल के राष्ट्र की नींव कहा जाता है। ऐसी घोषणाएं समाज में बचपण के प्रति सम्मान जगाती हैं या नहीं, यह कहना तो कठीन है क्योंकि घोषणाएं प्रायः स्वयं औपचारिक होती हैं, किंतु इतना अवश्य देखा और कहा जा सकता है कि इन घोषणाओं को कई बार पढ़ने और सुनने से बच्चे अपने बालजीवन के प्रति कुंठाग्रस्त हो जाते हैं। वे यह साचने आदी हो जाते हैं कि वे फिलहाल कोई 'बड़ा' काम नहीं कर सकते क्योंकि अभी वे छोटे हैं, सभी महत्वपूर्ण काम वे बचपन की सीमा लांघकर ही कर सकेंगे। बचपन के आनंद और संषर्ष उनके लिए बोदे और निष्प्रयोजन हो जाते हैं। वे एक अजीब तरह की अधीरता से ग्रस्त हो जाते हैं। वे जल्दी से जल्दी बड़े हो जाना चाहते हैं और इस बलवती इच्छा के प्रभाववश वे बचपन के वर्षों की सार्थकता से वंचित रह जाते हैं।(स्रोत- कृष्ण कुमार, राज, समाज और शिक्षा, मैकमिलन, दिल्ली, 1978)

अध्ययन सामग्री 3–चुनने की स्वतंत्रता

एक दिन टीचर को स्कूल आने में थोड़ी देर हो गई। वह अलमारी बंद करना भी भूल गई थी। उसने देखा कि बहुत से बच्चों ने अलमारी खोल ली है और उसके चारों तरफ खड़े हैं। कुछ उसमें से चीजें निकाल कर ले जा रहे थे। टीचर ने सोचा कि इससे चोरी करने की प्रवृत्ति प्रकट होती है। टीचर ने कहा कि, जो बच्चे चोरी करते हैं वे अपने स्कूल और टीचर के प्रति अनादर प्रकट करते हैं। इसलिए उनके साथ सख्ती बरतनी चाहिए और उन्हें सही और गलत का अंतर समझाना चाहिए। इसके उलट मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चे अब उपकरणों के बारे में जान गए थे और वे उनमें से अपने लिए चुनने में सक्षम हो गए थे। असल में बात यही थी। अब तो एक जीवंत और दिलचस्प गतिविधि आरंभ हो गई। बच्चों के पास अब अपनी वरीयताएं थीं और उन्होंने अपना–अपना काम चुन लिया था। उन्हें ऐसा करने में सुविधा हो, इसके लिए हमने बाद में उनके लिए सुंदर नीची अलमारियां मंगवा दीं जिसमें बच्चों के चुनाव के लिए सामान रखा गया। इसमें से वे अपनी आंतरिक इच्छानुसार उपकरन चुन सकते थे। इस तरह अभ्यास के दोहराव के साथ चुनने की स्वतंत्रता का सिद्धांत भी आ गया।

चुनने की इस स्वतंत्रता के साथ बच्चों की प्रवृत्ति और मानसिक आवश्यकताओं के बारे में अवीक्षण संभव हो गया।

एक दिलचस्प परिणाम यह देखा गया कि बच्चों ने उपलब्ध वैज्ञानिक उपकरणों में से कुछ ही चुने, सब नहीं। वे सदा वही उपकरण चुना करते थे। उनमें से कुछ की अपनी स्पष्ट वरीयता थी। बाकी उपकरणों को पड़ा रहने दिया गया और उन पर धीरे–धीरे धूल जमने लगी।

मैंने वे सभी उपकरण बच्चों के सामने प्रस्तुत किए और टीचर से कहा कि वह उनकी उपयोगिता समझाए और दिखाए। फिर भी बच्चे अपने आप उनको नहीं उठाते थे।

तब मेरी समझ में आया कि बच्चों के लिए जो परिवेश तैयार किया जाता है उसमें सब कुछ न केवल करीने से रखा जाना चाहिए बल्कि एक नपी तुली सीमा में ही होना चाहिए। बच्चों की एकाग्रता और रुचि तभी जागती है जब भ्रम और अत्यधिक मात्रा न हो। मारिया मोंटेसरी, बचपन का रहस्य, अनु. –सुशील कपूर, आकार, दिल्ली, 2013

4.2 प्रतियोगिता और सहयोग :

स्कूलों में प्रतियोगिता के अवसर हम अक्सर देते रहते है । लेकिन यह प्रश्न शायद ही कभी पूछा जाता है कि प्रतियोगिता असर सकारात्मक होता है नकारात्मक । कक्षा में अधिक अंक पाने की होड़, पुरस्कार मिलना या हर जगह प्रथम, द्वितीय, तृतीय का स्थान निर्धारण स्कूलों के आम कार्यव्यवहार के हिस्से है ।

प्रतियोगिता के मामले में प्रायः दो तरह के विचार रखे जाते है । एक विचार तो यह है कि प्रतियोगिता भयानक है, और इससे व्यक्तित्व का विकास ईर्ष्या, प्रतिद्वन्दिता तथा दूसरों को हानि पहुंचाने की मानसिकता के निर्माण में होता है । इस तरह के विचार में सहयोग की भावना और प्रतिस्पर्धा हीनता को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । दूसरा विचार प्रतियोगिता को व्यक्तित्व विकास की अनिवार्य शर्त मानता है । इस तरह के विचार में माना जाता है कि प्रतियोगिता से प्रेरणा प्राप्त होती है और व्यक्ति एकाग्र होकर वांछित कौशलों का विकास करता है, परिश्रम करता है और श्रेष्ठतम होने के लिये सार्थक प्रयास करता है । दर असल ये दोनों विचार चरम छोर पर जाकर बात करते है । वास्तविकता तो यह है कि प्रतियोगिता और सहयोग दोनों हीं सीखने–सीखाने में उपयोगी हो सकते है।

प्रतियोगिता के संदर्भ में प्रसिद्ध शिक्षाविद आर.एफ. डियरडेन ने तीन स्थितियों का उल्लेख किया है। पहली स्थिति तब होती है जहां 'अ' और 'ब' एक ही चीज को प्राप्त करने के लिये आपस में प्रतियोगिता करते है । यह चीज बस की सीट, किसी बड़े व्यक्ति जैसे शिक्षक से निकटता, नौकरी, पद, पुरस्कार, परीक्षा में प्राप्तांक कुछ भी हो सकता है । दूसरी स्थिति तब बनती है जब किसी चीज की प्राप्ति के लिए 'अ' नामक 'ब' नामक व्यक्ति को वंचित करें । उदाहरण के लिए आप नाव पर सवार है और अचानक नाव में कहीं छेद हो जाये और डूबने लगे । एक दूसरी नाव लोगों को बचाने आए और लोग एक दूसरें को धक्का देकर स्वयं आगे जाने की कोशिश करें । ऐसी स्थिति तब नहीं आती है जब समान रूप से सभी को अवसर प्राप्त हो । जैसे हवा सभी को समान रूप से सांस लेने के लिए उपलब्ध है, लेकिन गर्मी के दिनों में पंखें के पास जाने के लिये लोग ऐ दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगते है । स्कूलों में कोशिश यह होनी चाहिए कि हर तरह की गतिविधि में भाग लेने के लिए सभी बच्चों को समान रूप से अवसर प्राप्त हो।

तीसरी स्थिति तब बनती है जब 'अ' और 'ब' किसी चीज पर एकाधिकार प्राप्त करना चाहते हो । ऐसी स्थिति में एक को वंचित होना ही पड़ता है । स्कूलों में ऐसी स्थिति तब देखते है जब बच्चे अपनी पुस्तक, लिखा गया उत्तर, कोई नई वस्तु आदि अन्य बच्चों से छिपाते है । इसलिए स्कूलों में यह प्रयास किए जाने चाहिए बच्चे अपनी सारी चीजों को आपस में साझा करें, उन पर बातचीत करें और एक दूसरें से सीखे ।

प्रतियोगिता और सहयोग को सामान्यतः एक दूसरे के विपरीत माना जाता है । ऐसा माना जाता है कि एक को अपनाने से दूसरे को पूरी मरह से बाहर कर दिया जाता है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं होता है । एक स्वस्थ प्रतियोगिता बिना आपसी सहयोग के हो ही नहीं सकती है । प्रत्येक खेल के नियम होते है और उनका पालन सहयोगात्मक तरीके से ही सम्भव होता है । नियमों के पालन को ही हम खिलाड़ी भावना कहते है । यदि संयुक्त रूप से नियमों का पालन नहीं होता है तो वो खेल ही नहीं है । अतः कक्षा में

शिक्षक को इस तरह से कार्य करना चाहिए कि बच्चे समूह में एक दूसरे का सहयोग करते हुए कार्य करें। बच्चे अपनी चीजों को साझा करना सीखें । गतिविधियों को खेल के रूप में करें और समूह को विजेता घोषित करें लेकिन अन्य समूह को छोटा न करें । इसी प्रकार मूल्यांकन को श्रेणी और प्राप्तांक में न बांधकर सतत और समावेशी करें ।

प्रतियोगिता के संदर्भ दो बातें ऐसी है जो नकारात्मक की ओर ले जाती हैं एक है महत्वाकांक्षा । प्रत्येक व्यक्ति में आगे बढ़ने की आकांक्षा होती है । लेकिन इस आकांक्षा की अति व्यक्ति को ईष्यालु, धूर्त और क्रूर बनाती है । बच्चों को श्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए प्रेरित करना जहां शिक्षा का उद्देश्य है वहीं शिक्षा का उद्देश्य यह भी है कि श्रेष्ठ कार्य करते हुए बच्चे निष्ठुर न बन जाए । स्कूल का कार्य बच्चों को इस तरह गतिविधियों में जोड़ता है कि वे एक दूसरे से सीखे और एक दूसरे को श्रेष्ठ बनाने में मदद करें ।

ऐसी ही एक दूसरी बात है तुलना करना । प्रायः यह देखा जाता है कि बच्चों की आपस में तुलना की जाती है । यह बच्चा अच्छा है और वह खराब, या यह तो किसी काम का नहीं है । इस तरह की तुलना बहुत ही घातक होती है । कई बार तो बच्चों का तुलना करते हुए मजाक उड़ाया जाता है । जिस बच्चे का मजाक उड़ाया जाता है, वह कुण्डित होकर सीखना ही छोड़ देता है । अतः इस तरह की तुलना किया जाना वांछित नहीं है । तुलना बच्चे के स्वयं के प्रदर्शन से की जा सकती है । जैसे, पिछली बार से इस समय सीमा पर ध्यान देना चाहिए । इस बार तुम्हारी लिखाई बहुत अच्छी हुई है । इस तरह बच्चें को अपने सुधार के लिए एक दिशा मिलेगी । इस प्रकार हम देखते है कि प्रतियोगिता और सहयोग एक दूसरे के साथ–साथ चलते है और शालेय गतिविध को सफल और रूचिकर बनाते है ।

क्रियाकलाप 1

जे.एस. कृष्णमूर्ति के निम्नलिखित कथन पर 5–5 के समूह में चर्चा करें। चर्चा के पश्चात पूरी कक्षा में प्रत्येक समूह यह बताएं कि कृष्णमूर्ति जी यह क्यों कह रहे है कि हम वास्तविकता को कभी क्यों नहीं जान पाते है । ''हमारी शिक्षा व्यवस्था, हमारा सामाजिक जीवन, हमारी धार्मिक आकांक्षाएं, सभी कुछ और अधिक के आग्रह पर डिग्री हैं – अधिक आध्यात्मिक जीवन जीना, अधिक खुशी पाना, अधिक धन, अधिक ज्ञान, अधिक अच्छे सद्गुण आदि इकट्ठा करना – ये ही परम ध्येय होता हैं जिन्हें पाने के लिए आप सभी चेष्टा करते हैं । उसी तरह के परिवेश में पलते बढ़ते है और इसलिए हम वास्तविकता को, हम सचमुच जो कुछ हैं, उसे कभी नहीं जान पाते ।''

क्रियाकलाप 2

एक ऐसी गतिविधि की योजना बनाए जो बच्चों के खेल के रूप में हो । यह बताएं कि उस गतिविधि में प्रतियोगिता और सहयोग को किस तरह संयोजित किया जाए।

बोध प्रश्न :

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दे ।

1. क्या प्रतियोगिता की भावना व्यक्तित्व विकास में सकारात्मक भूमिका निभाती है ?
2. प्रतियोगिता और सहयोग कैसे एक दूसरे से जुड़े हुए होते है ?
3. कौन सी स्थिति में बच्चे एक दूसरे को वंचित कर आगे बढ़ते है ?
4. समूह कार्य महत्वपूर्ण क्यों है ?
5. तुलना करने की क्या हानि है ?
6. महत्वाकांक्षा किस प्रकार व्यक्ति के विकास को बाधित करता है ?

अध्ययन सामग्री–4:स्कूली शिक्षा और होड़ की मानसिकता– कमला मुकुंदा

मैं उन दो सबसे आम तर्कों को सामने रखूंगी जो होड़ के पक्ष में दिए जाते हैं। पहला यह कि स्पर्धा स्वाभाविक है। दूसरा यह कि किसी भी दूसरे तरीके कीतुलना में स्पर्धा से ही व्यक्ति का श्रेष्ठतम उभरता है। अब मुझेअनुमति दें ताकि मैं इन दोनों ही तर्कों का खण्डन कर सकूं।

जब होड़ को 'स्वाभाविक' कहा जाता है तो अमूमन मतलबयह होता है कि यह हमारे उद्विकास की धरोहर है – पशु स्पर्धा करतेहैं, फिर हम क्यों नहीं करें ? यह बात हम परे छोड़ देते हैं कि पशुतमाम और चीजें भी करते हैं जो हम नहीं करते, जैसे केवल कच्चाखाना या तारों की छांव में सोना। तथ्य यह है कि स्पर्धा उनकेजीवन में एक निश्चित या तयशुदा भूमिका भर निभाती है। अव्वलतो यह स्पर्धा उन संसाधनों के लिए होती है जो सीमित या कम हैं।

पर मुझे यह कभी समझ नहीं आया है कि कक्षा में शिक्षक से मिलने वालीशाबाशी या सराहना को स्वाल्प संसाधन क्यों होना चाहिए ? या हमेंकक्षाओं में सितारे (स्टार्स्) और श्रेणी (रेंक) जैसे नकली संसाधनगढ़ने की जरूरत भला क्यों पड़ती है ? अगर किसी कॉलेज में 10सीटें हों और उनके लिए 1000 आवेदन मिलें, तो आप निश्चित रूपसे कोई ऐसी स्पर्धात्मक प्रक्रिया अपनाएं ताकि यह तय हो सके किकिसे दाखिला मिलेगा, किसे नहीं। जहां संसाधन वास्तव में सीमितहों, वहां ऐसी स्थिति से निपटने का कोई दूसरा तरीका होगा भीनहीं।

दूसरे, पशुजगत में स्पर्धा इसलिए काम आती है ताकि प्रजातिको मजबूत बनाने के लिए, स्वस्थ व सबल को रोगी और दुर्बल सेछांटा जा सके, ना कि व्यक्तियों की छंटाई के लिए। मैं ऐसे किसीपाखी को नहीं जानती जिसने अपने प्रतिस्पर्धी के गीत को सुनउससे बेहतर गाने की कोशिश की हो, न ही किसी तितली को जोदूसरी तितलियों से ज्यादह सुन्दर दिखने के लिए अपने डैनों पर कुछऔर रंग पोत ले। परन्तु इन्सान व्यक्तिगत प्रदर्शन को सुधारनेके लिए होड़ का उपयोग करते हैं। जब हम कहते हैं 'स्पर्धाश्रेष्ठता उपजाती है' तो अमूमन हमारा यही मतलब होता है।

इस दावे के पेटे कि हम सबमें स्पर्धा व आक्रामक सहज–वृत्तियांहोती हैं, मैं महज इतना भर जोड़ना चाहूंगी कि हममें सहयोग वपरोपकार की प्रवृत्तियां भी होती हैं। उद्वविकासीय मनोविज्ञान,नृशास्त्रा, इतिहास तथा आचारशास्त्रा में हुई शोध यह संकेत देती हैंकि सहयोग व परोपकार जैसी प्रवृत्तियां भी हममें इसलिए विकसितहुई हैं क्योंकि कई स्थितियों में नृ अस्तित्व इन्हीं पर निर्भर करताहै। क्या इसका मतलब यह है कि हमें स्पर्धा समेत इन सभी प्रवृत्तियोंके लिए मौके देने होंगे ?

शायद इसका मतलब यह है कि हमें बड़ीसावधानी से सोच–समझ कर यह तय करना होगा कि हम अपनेसमाज में किन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना, तवज्जो देना चाहतेहैं ? क्योंकि होड़ की मानसिकता, वैश्विक आयाम पा उस सामाजिकदुष्क्रिया का रूप धर चुकी है जो आज हमें अपने आस–पास नजरआती है (उदाहरण के लिए गरीबी, असमानता आदि)।

अब दूसरे तर्क को देखते हैं। मैंने होड़ की परिस्थियों से बाहरछात्राों, शिक्षकों और लोगों के समूहों को छोटे–बड़े रूप में श्रेष्ठताहासिल करते देखा है। हमारे स्कूल में हम लगातार यह देख–जान रहेहैं कि स्पर्धा के बिना भी श्रेष्ठता संभव है। कई चीजें बिना फूहड़पन,असावधानी, बहानेबाजी या सचेतन गर्व के साथ बड़ी अच्छी तरहकी जाती हैं। इससे हमें अचरज भी नहीं होना चाहिए। सबसे बढ़ियासंगीत, श्रेष्ठ ज्यामितिय प्रमेय और खूबसूरत उपन्यास क्या किसीस्पर्धा के विजेता थे ? निश्चित रूप से रचनात्मक श्रेष्ठता के तमामदूसरे सशक्त स्त्रोत हैं, जैसे आविष्कार की तथा भावनात्मकअभिव्यक्ति की बौद्धिक उत्तेजना।

अगर होड़ हममें निहित श्रेष्ठत्तम को उभारती है तो साथ हीहमारे निकृष्टतम को भी। अगर किसी एक विषय या चीज मेंश्रेष्ठता उभरती है तो उसके समान्तर तमाम दूसरी चीजों में हमाराऔसतपन भी रेखांकित करती है। यहां मैं विजेताओं और हारनेवालों दोनों की सामाजिक स्वस्थमनस्कता, अंतर्वेयक्तिक मूल्य,मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य की बात कर रही हूं।

होड़ हमारी मंशा को भी प्रभावित करती है, और कुछ इसतरह जिसकी हमने उम्मीद तक न की हो। एक स्पर्धात्मक वातावरणमें कोई छात्रा कड़ी मेहनत के बावजूद असफल रह सकती है, क्योंकिसफलता की परिभाषा है दूसरों से बेहतर करना। सो उसे खुद सेपूछना पड़ता है, ''अगर मैं कोशिश करूं तो क्या सफल हो सकूंगी ?''

उसे दूसरों को पछाड़ने की अपनी काबलियत को आंकना पड़ेगाऔर उसकी सीखने की उत्प्रेरणा भी। इस मूल्यांकन पर निर्भरकरेगी। इसे ही मनोविद 'प्रयास की दोधारी तलवार' कहते हैं। यहकोशिश सफलता की ओर ले भी जा सकती है, पर अगर यहअसफलता की ओर जाए तो व्यक्ति का स्वाभिमान नष्ट हो जाताहै। अतः स्पर्धात्मक वातावरण में उन कठिन कामों से लोग बचतेहैं, जिसमें असफलता की संभावना हो।

यह सब जान आप शायद आरंभिक, बढ़त के सालों में स्पर्धा कोहटाने को तैयार हो जाएं। पर आप यह जरूर पूछेंगे कि जब छात्रास्कूल से निकलेंगे तो वे गला–काट स्पर्धा की दुनिया के लिए तैयारही नहीं होंगे? अनुभव ने हमें सिखाया है कि स्पर्धा की तैयारीदस–बारह साल के अभ्यास की बात नहीं है। स्पर्धा की जो स्थितियांआवश्यक रूप से उनके सामने आएंगी उनसे निपटने में व्यापकदृष्टिकोण, परिस्थितियों और स्वयं की गहरी समझ कहीं अधिककीमती है। उदाहरण के लिए तब किसी परीक्षा के नतीजे छात्रा केलिए जीने–मरने के निणर्य का आधार नहीं बनते। सार्वजनिक परीक्षाकक्षों के बाहर हमारे छात्रा हास्यास्पद रूप से हल्के नजर आते हैंःआखिरी वक्त तक रटने की कोई कोशिश नहीं, बस परीक्षा देने कीएक आतुरता। वे परीक्षाओं में और स्कूल से आगे जीवन में अच्छाप्रदर्शन करते हैं। अपने चुने हुए क्षेत्राों में प्रवेश पाने और उनमें सफलहोने के लिए वे मेहनत करते हैं। उदाहरण के लिए उनमें से कुछ एक सालले, प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी करते हैं। कई मुख्यधारा की गला–काटस्पर्धा से अलग क्षेत्राों में करियरों को भी चुनते हैं, ताकि वे वह कर सकेंजो उन्हें अच्छा लगता है या जो उन्हें सार्थकता देता है।

दरअसल दुनिया केवल होड़ या मुख्यतः होड़ नहीं है। स्पर्धात्मकपरिस्थितियां सुनिश्चित होती हैं, या कहें एक संकीर्ण दायरे में सीमितहोती हैं, क्योंकि अन्यथा यह मापा ही नहीं जा सकता कि किसनेकिससे बेहतर किया। परन्तु दुनिया हर दिन और–और पेचीदाबनती जा रही है, इस तेजी से बदलती जा रही है कि युवावर्ग कोअपने ईर्दगिर्द की परिस्थितियों से निपटने के लिए ऊंचे दर्जे कीपहल और रचनात्मकता की जरूरत है। अगर वे दूसरों के साथसहयोग से काम नहीं कर सकते या सिर्फ होड़ की स्थिति में हीप्रेरित होते हैं या केवल तब ही खुश रह सकते हैं जब वे चोटीपर हों... तो उनके लिए संकेत शुभ नहीं हैं !

एक आखिरी बिन्दुः अमूमन हम श्रेष्ठता को भारी उपलब्धियोंके साथ जोड़ते हैं। परन्तु हमारे स्कूल में हम इस बात के प्रति सचेतहैं कि फर्श की झाड़ू करने जैसे निरीह कामों में भी श्रेष्ठता कीसंभावना है। परन्तु सामान्यतः किसी छात्रा की अच्छा झाड़ू लगानेके लिए कदर भी नहीं की जाएगी और न उसका नाम झाड़ू लगानेकी स्पर्धा में दर्ज करवाया जाएगा। मुझे डर है कि ऐसे में जो संदेशबच्चे ग्रहण करते हैं वह है, श्रेष्ठता बराबर उत्पाद बराबर कदर। हमअपनी जिन्दगी का ज्यादातर समय, चुपचाप अपने छोटे–छोटे कामकरते गुजारते हैं। रोजमर्रा के जीवन में हम एक–दूसरे के दैनंदिनकामों की गुणवत्ता का सामना भी करते हैं, और हमें तब बड़ीउलझन होती है जब उनमें गुणवत्ता नदारद दिखती है। जब येछोटे–छोटे काम श्रेष्ठता से किए जाएंगे तब ही हमें इस देश में फर्कनजर आएगा।

मुझे लगता है कि शिक्षा एक ऐसी सामाजिक संस्था है जोकिसी दूसरी संस्था से नितांत भिन्न है। व्यापार, उद्योग और सरकारसबके लिए एक निम्नतम सीमा है : धन, शक्ति, प्रतिष्ठा। परशिक्षा इससे बिल्कुल अलग बात है (कुछ ऐसे स्कूलों को छोड़ करजो दरअसल व्यापारिक उपक्रम हैं !) यहां निम्नतम सीमा है सीखना।और सिखाने में कुछ ऐसा है जो आधारभूत, क्रांतिकारी औरपरिवर्तनकारी है – कम से कम इस सबकी संभावना तो है, बशर्तेउसे विषयों और कौशलों के खांचों में बांध न दिया जाए। यहीकारण है कि शिक्षा समाज में ऐसा बदलाव ला सकती है जो किसीदूसरी सामाजिक ताकत से नहीं लाया जा सकता।

कमला वी. मुकुंदा,अंतंस की पड़ताल ,शिक्षा–विमर्श ,नवम्बर–दिसम्बर, 2007 ,भाषान्तर : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

4.3विश्वास – भय :

विश्वास और भय एक दूसरे से गहरे जुड़े है । जहां भय होगा वहां विश्वास कम होगा । यदि आप विश्वास पैदा करना चाहे तो भय को कम करना पड़ता है । जिस व्यक्ति से हम डरते नहीं है तो उस पर हमारा विश्वास भी अधिक होगा। अतः शाला में हमारा प्रयास होना चाहिए कि बच्चे हमसे डरे नहीं, हम पर अधिक से अधिक विश्वास करें । विश्वास का संबंध ही शिक्षक ओर छात्र के बीच के श्रेष्ठ संबंध है ।

शाला में भय की स्थितियां निम्नलिखित कारणों से पैदा होती है ।

- अनुभव और अनिश्चयता :– जब किसी को शाला में रोजाना डांटा या पीटा जाए तो वयस्कों के प्रति उसका अनुभव अविश्वास का बनता है । ऐसी स्थिति में वह हमेशा अनिश्चतता की स्थिति में रहता हैं कि वह क्या करें कि उसे डांट न पड़े या उसे पीटा न जाए । इस तरह वह वयस्कों के सामने वह हमेशा असुविधा महसूस करता है और धीरे –धीरे कुष्ठित हो जाता है ।

- शक्ति असंतुलन :– बच्चे हमेशा शिक्षक से कम हैसियत रखते है । प्राचार्य या प्रधान अध्यापक के सामने तो उनकी बोलती बंद हो जाती है । शक्ति का यह असंतुलन सीखने में बाधक होता है । बच्चे तब अपने को अधिक शक्तिशाली सिद्ध करने के लिये दूसरे बच्चो से लड़ने–झगड़ने और मारपीट करने लगते है । अतः जरूरी यह है कि बच्चों को शाला में अभिव्यक्ति का अधिक से अधिक मोका दिया जाए ।

कुल मिलाकर यह कहना उचित होगा कि शाला में एक विश्वसनीय वातावरण का निर्माण करना अति आवश्यक है । इसके लिए निम्नानुसार गतिविधयां ली जा सकती है।

- प्रतिनिधित्व बढ़ाना :–शाला के प्रत्येक कार्य में बच्चों को जोड़ा जाना एक कारगार उपाय है । समय सारणी से लेकर पाठ्य वस्तु के निर्धारण में उन्हें शामिल किया जाना चाहिए । उन्हें अधिक से अधिक अभिव्यक्ति के मौके दिए जाने चाहिए ।

- क्षमता सवर्द्धनः– बच्चों को ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदारियां सौंपकर, उनसे कई तरह के कार्य करवाकर उनका क्षमता संवर्द्धन किया जा सकता है । उदाहरण कि लिए पाठ्य सामग्री का रख रखाव, कार्यक्रमों का संचालन आदि बच्चों से करवाया जा सकता है ।

- प्रशंसा :– अच्छे कार्य कि लिए व्यक्तिगत ओर समूह की प्रशंसा भी भय को कम करता है। उदाहरण के लिए कक्षा को सज्जित करने का कार्य सौंपकर, जिस कक्षा ने सबसे अच्छी सज्जा की है उसकी प्रशंसा करना ।

- बच्चों के कार्य में दिलचस्पी दिखाना :– शिक्षक जब बच्चों के हर छोटे–बड़े, महत्वपूर्ण और महत्वहीन कार्य में दिलचस्पी दिखाते है ओर बातचीत करते है तो बच्चों का विश्वास बढ़ता है और भय कम होता है ।

क्रियाकलाप 1

समूह में चर्चा करें और पूरी कक्षा में चर्चा करें कि बच्चे किन चीजों से डरते है और क्या करने से उनका डर दूर होगा ।

क्रियाकलाप 2

एक बार जे.एस. कृष्णमूर्ति एक कन्या विद्यालय गये । चालीस से पचास छात्राओं की कक्षा थी । कृष्णमूर्ति ने पूछा –''इतनी सारी छात्राओं को कैसे संभाल लेते है आप ?'' शिक्षक ने उत्तर दिया :– इसमें क्या है ? एक तो ये लड़कियां है, जरा–सी आंखें दिखाई या एकाध को हाथ जमाना कि बस, चुप । फिर क्या मजाल कि पूरी कक्षा में कोई गड़बड़ या चूं–चूं करें ।''

इसी तरह एक बार एक अन्य विद्यालय में कृष्णमूर्ति जी ने तीस से चालीस लड़कों को घूमते फिरते व काम–काज करते देखा तो उन्होने शिक्षक से पूछा–''पानी के रेले जैसे इन लड़कों को आप संभालते कैसे है ?'' शिक्षक ने उत्तर दिया – '' लड़के उधमी नहीं है। इनमें सचमुच पानी की धारा जैसा बल है और इसीलिए इन्हें स्वयं व्यवस्थित किया जा सकता है । यहां हमने बालकों

के लिए अनुकूल व रूचिकर प्रवृत्ति की व्यवस्था की है । बच्चे एक पंक्ति में बैठे रहे, घूमें नहीं, चुपचाप पढ़ते रहें, इसे मैं अनुशासन नहीं मानता ।''

बताइये कि कौन सा स्कूल अच्छा है और क्यों ?

बोध प्रश्न :–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. भय की स्थिति में बच्चे क्यों नहीं सीख पाते है ?
2. विश्वास स्थापित हो इसके लिए आप शाला में क्या करेंगे ?
3. भय की कौन सी दो स्थितियां है ?
4. बच्चों को अभिव्यक्ति के अधिक से अधिक अवसर क्यों दिये जाने चाहिए ?
5. बच्चों को जिम्मेदारियां क्यों सौंपी जानी चाहिए ?

अध्ययन सामग्री 5: बेचारे मास्टरजी!-गिजुभाई

उन मास्टरजी को मैं अभी भूला नहीं। उनकी दीन–हीन घबरायी मुख–मुद्रा अभी आँखों के सामने से हटी नहीं। उस दिन शाम को उनकी जो हालत हुई और मुझे जो दुःख पहुँचा, वह अब भी पीड़ित करता है मुझे। दुःखी दिल से बार–बार यही स्वर निकलते हैं : शिक्षक भाइयो! आप लोग हिम्मतवान बनो, खड़े हो जाओ, इतने ज्यादा घबराओ मत। बड़े से बड़ा आदमी आए तब भी संयत होकर शान्ति के साथ जवाब दो।

हुआ यों कि मैं अपने एक बेरिस्टर मित्र के साथि एक शाम तफरीह के लिए एक गाँव में निकल गया। हम मोटर में थे। मेरा मित्र साहिबी वेशभूषा में था। हमारी गाड़ी गॉव के गोरवे में आकर खड़ी हुई और रोजमर्रा के स्वभाववश बेरिस्टर साहब रोब से नीचे उतरे और उन्हें जो आदमी पहले–पहल दिखाई दिया, उसे हुक्म के साथ उन्होंने पूछा :

इस गाँव के मास्टरजी कहाँ हं?

सुनने वाला एकाएक खिसिया गया। उसकी ऑखें ऊपर चढ़ गई। सोच के मारे भौहों के आजू–बाजू की रेखाऍ खिंचने लगीं। हाथ–पैर ढीले पड़ गए। जीभ मानो तालू से चिपक गई हो। उसके मुँह से आवाज तक नहीं निकली। साहब ने रिवाज के अनुसार खीज कर पूछा :

कहॉ हैं मास्टरजी? जवाब क्यों नहीं देते?

धोती–चोले वाले उस व्यक्ति ने बड़ी मुश्किल से कहा : मैं ही हूँ साहब, इस गॉव का मास्टर!

मेरी छाती में जैसे किसी ने तान कर जोर से वार किया हो, ऐसा लगा : यह है मेरा हम–पेशा मास्टर ? ऐसा कायर ? घबराया हु ? ऐसा डरपोक ?

मेरे मित्र तो चढ़ गए : अपनी स्कूल दिखाओं। किस क्लास तक चलती है? कितने लड़के पढ़ने आते हैं?

मास्टर जी कॉपते–कॉपते हमारे आगे–आगे चले और हम उनके पीछे–पीछे। दो–चार दूसरे आदमी भी सोच में डूबे हमारे पीछे–पीछे चले आ रहे थे।

एक छोटे–से पिंजरे जेसी जगह बताते हुए मास्टरजी ने कहा : यहीं लगती है हमारी शाल, साहब ! लड़कों की संख्या बहुत कम है। चौथी कक्षा तक...

बीच में ही साहब गरजे : इतनी ही संख्या क्यों है? इस गॉव की आबादी के हिसाब से इतनी ही क्यों है? बस, तुम्हीं आलसी होगे! बस, तुम्हीं को पढ़ाना नहीं आता होगा! नहीं तो ऐसा क्यों नहीं हुआ कि यहॉ लड़के समाऍ नहीं! क्यों, ठीक कह रहा हूं, मास्टरजी?

मास्टर जी बोले : साहब!.....

साहब बोले : साहब क्या? रूक क्यों गए! इस शाला की बढ़ोतरी न होने में तुम्हारा ही हाथ है ना, क्यों?

मास्टर जी बोले : जी हॉ, लेकिन....

साहब फिर कड़के : लेकिन–लेकिन, क्या करते हो? यह क्यों नहीं कहते कि कल से आप मेहनत करोगे, लड़कों को इकट्ठा करोके और शाला को नए लड़कों से भर दोगे!

मास्टरजी बोले : जी हॉ!

मैं तो यह संवाद सुनता ही रहा। भौचक्का रह गया। मन ही मन घुल रहा था। शर्मिन्दा हो रहा था। अरे, मेरे शिक्षक बन्धु! क्यों घबरा रहे हो? जो भी सचाई हो उसे सभ्यतापूर्वक साफ–साफ क्यों नहीं कह डालते? क्यों कोट, पतलून, हैट से डरे जा रहे हो?

मैंने अपने मित्र से कहा : ऐ भाई! अब छोड़ ना बेचारे को। बेकार ही क्यों तंग कर रहे हों? एक पाई भर–का तो अधिकार नहीं, फिर क्यों डरा रहे हो?

मित्र बोला : लेकिन ये डर क्यों रहे हैं? ये मुझे ऐसा जवाब क्यों नहीं देते कि जो टन्न से मेरे माथे में बजे?

मैंने कहा : यही तो मैं सोच रहा हूँ। यही खोज करनी है मुझे। शिक्षक का डर कैसे मिटे, इसी का उपाय करना है मुझे।

मेरा मित्र शाला छोड़ कर वापिस लौटा। मास्टरजी हमें मोटर तक पहुँचाने आए। मेरा मित्र फिर से शुरू हो गया : देखो मास्टर! यूँ नहीं चलेगा! यह तुम्हारी मैली धोती और बढ़ी हुई हजामत! यह तुम्हारी गन्दी शाला और इतने–से लड़के...

मास्टर जी बोले : लेकिन साहब ! हमारे उच्च अधिकारी साह..

बस !यह मैं नहीं समझता !

मास्टरजी हाथ जोड़े खड़े रहे। मेरे भीतर ऑसू भर आये। अरे रे, ये डरपोक मास्टरजी! अनधिकार दबाने वाले इस व्यक्ति से कितने डर गए! यह क्यों नहीं पूछते कि आपका नाम क्या है, आप कहॉ से आए हैं? यह पूछते तक नहीं कि आप कोई अधिकारी हैं या हूँ ही कोई भटकते ढोर? बेचारे मास्टर! मुझे उन पर अपने हम पेशा भाई पर बड़ी दया आई। मन में सोचा : यह बात मैं सबों को लिखकर बताऊँगा कि हम लोग कैसे झूठ–मूठ डरने वाले डरपोक हैं।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अधिकतम 50 शब्दों में दें

1. मास्टर जी को बेचारे क्यों कहा गया है?
2. गांव के मास्टर की वेशभूषा कैसी थी?
3. बेरिस्टर मित्र की वेशभूषा कैसी है?
4. बेरिस्टर ने गॉव के आदमी से क्या प्रश्न किया।
5. एक गांव का मास्टर, घबराया, कायर और डरपौंक क्यों है?
6. बेरिस्टर मित्र के सभी प्रश्नों पर "साहब जी" का उत्तर मिलने का क्या कारण है?
7. शिक्षक संवाद सुनकर शर्मिन्दा क्यों हो रहा है?
8. अनाधिकार डराने वाले व्यक्ति के बारे में शिक्षक जानकारी क्यों नहीं ले पाता है?

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अधिकतम 150 शब्दों में दें

1. बेचारे मास्टर जी पाठय सामग्री को पढ़कर मास्टर की समीक्षा करें।
2. विद्यालय में किसी अपरिचित, अनाधिकृत व्यक्ति से शिक्षक को किस प्रकार संवाद करना चाहिये।
3. मास्टर जी के व्यवहार या संक्षिप्त नोट लिखो।

अध्ययन सामग्री 7:– व्यवस्था के प्रति उनकी संवेदनशीलता

एक अत्यंत साधारण घटना से एक और विवरण प्रकाश में आया। बच्चे उनके लिए बनाए गए उपकरण का प्रयोग करते थे लेकिन उसके वितरण और बाद में संभाल कर रखने का काम उनकी टीचर करती थी। उसने मुझे बताया कि जब वह यह काम कर रही होती तो बच्चे उसके पास खड़े हो जाते। वह उनको अपनी जगह पर जाकर बैठने भेजती पर वे फिर वापस आ जाते। ऐसा कई बार हुआ तो टीचर इस नतीजे पर पहुंची कि वे अवज्ञाकारी हो रहे हैं। जब मैंने उनको देखा तो मैं समझ गई कि वे सारा सामान खुद वापस रखना चाहते हैं। मैंने उनको ऐसा करने की छूट दे दी। इस तरह उनके जीवन में चीजों को करीने से रखने का एक नया परिवर्तन आया। अगर कुछ गलत हो गया हो तो उसे दुरुस्त करना उनके लिए बहुत रोमांचक काम था। अगर पानी का गिलास किसी बच्चे के हाथ से गिर जाता तो बाकी बच्चे दौड़ कर कांच के टुकड़े उठाते और फर्श को पोंछ कर सुखाते। एक दिन टीचर ने तिरेसठ अलग–अलग मापांकित रंग की गोलियों वाला एक छोटा बक्सा गिरा दिया। मुझे उसका भ्रम याद है क्योंकि इतने सारे मिलते–जुलते रंग थे जिनको पहचानना और अपनी जगह पर रखना मुश्किल काम था, लेकिन बच्चे तुरंत उसके पास दौड़ कर आए। उन्होंने बड़ी फुर्ती से सारी गोलियों को उनकी सही जगहों पर रख दिया। रंगो के प्रति उनकी यह संवेदनशीलता आश्चर्यजनक थी जो हम बड़ों में न थी। (मारिया मोंटेसरी, बचपन का रहस्य, अनु. –सुशील कपूर, आकार, दिल्ली, 2013)

हमने जाना

- स्वतंत्रता विद्यार्थी और शिक्षक दोनों के लिए आवश्यक हैं।
- स्वतंत्रता का अर्थ ही हैं बिना बाधा और आरोपण के कार्य करना।
- स्वतंत्रता का अर्थ मन मर्जी से स्वच्छता से कार्य करना नहीं हैं।
- स्वतंत्रता और अनुशासन एक दूसरे के परिपूरक हैं।
- अनुशाासन का तात्पर्य हैं आत्म–अनुशासन, आत्म–नियंत्रण, स्व–प्रेरणा से कार्य करना।
- अनुशासन 'स्वतंत्रता का फल' हैं।
- प्रतियोगिता और सहयोग दोनों ही सीखने–सीखाने में उपयोगी हो सकते है।
- एक स्वस्थ प्रतियोगिता बिना आपसी सहयोग के हो ही नहीं सकती है ।
- प्रतियोगिता के संदर्भ दो बातें ऐसी है जो नकारात्मक की ओर ले जाती हैं एक है महत्वाकांक्षा और दूसरी तुलना करना।
- विश्वास और भय एक दूसरे से गहरे जुड़े है । जहां भय होगा वहां विश्वास कम होगा । यदि आप विश्वास पैदा करना चाहे तो भय को कम करना पड़ता है ।
- शाला में भय की स्थितियां अनुभव और अनिश्चयता, और शक्ति असंतुलनसे पैदा होती है।

डीएलएड, पेपर 4– स्वयं की पहचान इकाई 1– स्वयं की क्षमता

अध्याय 5: समालोचनात्मक चिंतन के लिए कौशलों का विकास

5.01 परिचय

5.02 उद्देश्य

5.1 अध्ययन सामग्री–1:समालोचनात्मक चिंतन और इसके कौशल:परिचय

5.01 परिचय

शिक्षा के क्षेत्र में समालोचनात्मक चिंतन का विशेष महत्त्व है क्योंकि शिक्षा का सारा कारोबार ही ज्ञान, ज्ञान के अनुप्रयोग और चिंतनशीलता पर निर्भर है। समालोचनात्मक चिंतन वो क्षमता है जिससे स्प्ष्ट और तर्कपूर्ण ढंग से चिंतन किया जाता है। इस तरह चिंतन करने की क्षमता अंततः विमर्श करने, अपनी बात को तार्किक तरीके से प्रस्तुत करने, किसी वस्तु या घटना के विभिन्न पक्षों पर विचार करने में सहायक होता है। साथ ही विचारों में अंतर्संबंध स्थापित करने और उनकी प्रासंगिकता की जांच करने में भी सहायक होता है। आज के समय की मांग है कि हम स्वयं समालोचनात्मक चिंतन करने में सक्षम हो और विद्यार्थियों में समालोचनात्मक चिंतन करने की क्षमता का विकास करें।

5.02 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद हम जानेंगे कि –

- समालोचनात्मक चिंतन क्या है।
- समालोचनात्मक चिंतन की विशेषताएँ क्या है।
- समालोचनात्मक चिंतन करने के लिए कौन से कौशलों का विकास किया जाना चाहिए।

5.1 अध्ययन सामग्री–1:समालोचनात्मक चिंतन और इसके कौशल:परिचय

यह पाठ समालोचनात्मक चिंतन का परिचय देता है। यह बताता है कि गैर–आलोचनात्मक और आलोचनात्मक चिंतन में क्या अंतर होता है। समालोचनात्मक चिंतन की खास बातों, इसके लिए जरूरी कौशलों का जिक्र करने के अलावा यह कक्षा में पढ़ाते हुए छात्रों के भीतर समालोचनात्मक कौशलों का विकास करने के तरीकों पर भी चर्चा करता है।

समालोचनात्मक चिंतन क्या है

समालोचनात्मक चिंतन को कई तरह से समझा जा सकता है। जैसे तर्कपूर्ण ढंग से सोचना, प्रत्येक कार्य के सभी पक्षों पर विचार करते हुए कार्य को सम्पन्न करना। किसी भी घटना को सत्य की कसौटी पर जाँचना और उसके पक्ष में तर्क प्रस्तुत करना। वस्तुतः गहराई में जाकर देखा जाए तो *समालोचनात्मक चिंतन का आधार तार्किकता ही है।*

संक्षेप में कहा जाए तो समालोचनात्मक चिंतन का तात्पर्य है कि क्या सत्य माना जाए और उसी के आधार पर क्या किया जाए। अर्थात् सबसे पहले यह तय करना कि हमारे आस–पास जो कुछ भी घटित हो रहा है, ज्ञान का जो प्रकरण हमारे सामने उपस्थित हो रहा है, जो विचार हमारे समक्ष प्रकट किया जा रहा है – उसको हम स्वीकार करे या नकारे। इसके लिए हम न्यायोचित तर्क से निष्कर्ष तक पहुँचते है।

न्यायोचित तर्क करना याने अड़ियल प्रवृत्ति न अपनाते हुए, तर्क की कसौटी पर किसी भी बात को स्वीकार करना। न्यायोचित तर्क हमेशा विवेकशील होता है और किसी भी मुद्दे के सभी पक्षों पर मनन करता है। विवेकशील होने का तात्पर्य है विचार, मूल्य आदि के प्रति जिम्मेदारी के साथ सोचना और विचार

करना। सभी पक्षों पर विचार करने का मतलब है किसी भी बात को गहराई में जाकर देखना, उस पर विस्तार से सोचना, तथा उसें संबंधित हर मुद्दे की जटिलताओं को समझना।

समालोचनात्मक चिंतन में निम्नलिखित बातें समावेशित होती है।

- अलग–अलग विचारों के बीच तार्किक अंतर्सम्बंधों को समझना।
- तर्क, युक्ति या दलील को पहचानना, तर्क गढ़ना और तर्कों का आकलन करना।
- प्रस्तुत किये गए तर्क में असंगति या सामान्य त्रुटियों को ढूंढ निकालना।
- व्यवस्थित और क्रमबद्ध तरीके से समस्याओं का समाधान करना।
- विचारों के महत्व और प्रासंगिकता को परखना।
- अपनी मान्यताओं और मूल्यों के औचित्य पर सोचना विचारना

समालोचनात्मक चिंतन के मूल तत्व

समालोचनात्मक चिंतन के कई तत्वों के बारे में मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने सोचा है जिनमें निम्नलिखित तत्व प्रमुख है।

- समस्या/लक्ष्य की पहचान – यह जानना कि चिंतन का विषय क्या है? समस्या से संबंधित मान्यताएँ, विश्वास और विचार क्या है? समस्या के विभिन्न पक्ष क्या है? समस्या की वर्तमान स्थिति क्या है? समाधान के लिए क्या किया जा सकता है?
- निदान – समस्त जानकारी हो जाने पर निदान या समाधन का सबसे उपयुक्त तरीका चिह्नित करना।
- खोज करना– कार्य की दिशा तय करना। यह समझना कि कार्य कैसे सम्भव हो सकेगा।
- सही कदम उठाना – कार्य सम्पादन के लिए उचित और सही कदम उठाना।
- चिंतन करना– यह विचार करना कि उठाए गए कदम कारगर हुए या नहीं। यदि कारगर हुए तो कार्य को बेहतर कैसे किया जाए। नहीं तो गलतियाँ कहाँ हुई और कैसे सुधार किया जा सकता है।जो कार्य किया गया है उसमें भविष्य के लिए क्या मूल्यवान है?

समालोचनात्मक चिंतन के कौशल

समालोचनात्मक चिंतन के लिए कौशलों का विकास जरुरी है। वीस्ट Weast (1996) के अनुसार ये कौशल निम्नलिखित है–

- अन्य व्यक्ति या लेखक के द्वारा प्रतिपादित निष्कर्षों की पहचान करना।
- प्रस्तुत तर्क के कारणों व साक्ष्यों को समझ पाना।
- अस्पष्ट भाषा को समझ पाना।
- मूल्य संबंधी मान्यताओं और मूल्यों के द्वन्द को समझना।
- विवरणात्मक मान्यताओं को समझना।
- संख्यात्मक तर्क को जाँचना।
- प्रस्तुत नमूनों और मापन को जाँचना।
- तर्कपूर्ण चिंतन को जाँचना।
- छूट गये तथ्यों को चिह्नित करना।

- बिना पक्षपाती रवैये के अपने स्वयं के मूल्यों को प्रतिस्थपित करना।

छात्रों के साथ बराबरी व सम्मान का व्यवहार

स्कूली शिक्षा में आलोचनात्मक चिंतन का विशेष महत्त्व है। आलोचनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए कई कदम उठाए जाने जरूरी हैं। इनमें सबसे अहम है कि जो कुछ पढ़ाया जा रहा है, उसके बारे में छात्रों के प्रश्न पूछने, चुनौती देने, अलग राय रखने और कारणों व औचित्य की माँग करने के अधिकार को मान्यता दी जाए। जो शिक्षक छात्रों के इस अधिकार को नहीं पहचान पाते वे उनके साथ समतापूर्ण और सम्मानजनक व्यवहार नहीं कर पाते हैं।

छात्रों के साथ बराबरी और सम्मान का व्यवहार करने के लिए यह जरूरी होता है कि उनके स्वतन्त्र निर्णय और आकलन की शक्तियों के प्रयोग के अधिकार को मान्यता दी जाए। छात्रों को इस अधिकार से वंचित करना उन्हें उनकी ''बराबरी के मूल्य वाले व्यक्ति'' की हैसियत से वंचित करना है। वहीं उनके साथ आदर के साथ पेश आने का मतलब है उनके आत्म–सम्मान व व्यक्तित्व के साथ ईमानदार से पेश आना। वहीं धोखा देकर या मतारोपण कर या किसी भी बात में विश्वास करने के लिए उन्हें मूर्ख बना कर (भले ही वह बात सच हो) उनके ऊपर अपनी बातें थोपना – ये सब बातें छात्रों की आलोचनात्मक शक्ति को कमजोर करती हैं।

विद्यार्थी में आलोचनात्मक चिंतन की क्षमता को बढ़ाने के लिए हमें शैक्षिक गतिविधियों को आलोचनात्मक चिंतन के मानदंडों के अनुसार आयोजित करना चाहिए, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। छात्रों को समीक्षात्मक विचारक बनाने का बुनियादी मतलब यही है कि उन्हें सवाल पूछने, सबूत खोजने, विकल्प खोजने व जाँचने एवं अपने और दूसरों के विचारों के प्रति समीक्षात्मक होने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इस तरह का प्रोत्साहन विद्यार्थी को वैचारिक रूप से स्वतंत्र व्यक्तित्व की ओर ले जाता है।

आत्म–चेतस् व स्वतंत्र शिक्षार्थी

ज्ञान देना और उसे साझा करना दो अलग संकल्पनाएं हैं। यदि पहले से तय ज्ञान को शिक्षार्थी पर थोपा जाए और उसे तर्क व आपत्ति करने की इजाजत नहीं दी जाए तो इससे छात्र की विचार क्षमता कुंठित होती है। यदि वे तर्क और औचित्य की कसौटी पर कस कर किसी बात तो स्वीकार करते हैं तो इससे उनकी तार्किक क्षमता व स्वतंत्र चेतना कुंठित होती है।

छात्रों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे किसी बात से जुड़े हुए सबूतों को जाँचे और किसी दावे की सच्चाई के बारे में स्वतन्त्र होकर फैसला लें। ऐसा अभ्यास करते हुए छात्र धीरे–धीरे एक आलोचनात्मक निर्णायक बनता जाता है। निर्णय करने के कौशल में बहुत से वैकल्पिक विश्वासों की मान्यताओं, दावों को तथ्य व तर्क के आधार पर जांचना शामिल है। एक लोकतांत्रिक समाज में हर व्यक्ति में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह बहुत से दावों को स्वविवेक के आधार पर जांच सके और चुन सके। वैचारिक आत्मनिर्भरता एक स्वतंत्र व्यक्तित्व की ओर ले जाती है। स्वतंत्र व विवेकशील व्यक्ति निराधार मान्यताओं, अनुचित आग्रहों को यूं ही नहीं मान लेता और उन्हें अपनाने के पहले उनकी जांच करता है।

शिक्षक का दायित्व है कि वह छात्रों को जिम्मेदार, स्वतंत्रचेता व विवेकशील वयस्क बनाने में अपनी भूमिका निभाए। इसके लिए उसे छात्रों को ऐसे अवसर देने होंगे, जिनमें वे स्वतंत्र रूप से निर्णय करके देख सकें, प्रश्न कर सके, असहमति जता सके, खुद फैसले लेकर अच्छे–बुरे की जिम्मेदारी ले सके। शिक्षको को ऐसे अवसर मुहैया कराने होंगे, जिनके चलते छात्र किसी भी बात को अपने तर्कों की कसौटी पर जांच सके, दावों की पड़ताल कर सके और विश्लेषण कर सके। इसके लिए शिक्षक व छात्रों के बीच विश्वास, खुलेपन और बेहतर तर्क व विवेकशीलता के सम्मान का माहौल बनना बहुत जरूरी है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें

1. समालोचनात्मक चिंतन के दो उदाहरण अपने जीवन से देकर बताएँ कि आप किस तरह निष्कर्ष तक पहुँचे।
2. पक्षपातपूर्ण चिंतन समालोचनात्मक चिंतन को कैसे प्रभवित करता है?
3. बच्चों की जिज्ञासा को शांत करने में समालोचनात्मक चिंतन कैसे मदद करता है?
4. बच्चों से चर्चा करना क्यों जरुरी है?
5. बच्चों में समालोचनात्मक चिंतन के कौशल के विकास के लिए किस प्रकार चर्चा करेंगे स्कूली विषयों से उदाहरण देकर समझाएँ।

गतिविधि 1

निम्नलिखित कथन को पढ़कर उसके बाद दिये गये प्रश्नों का उत्तर लिखें। कक्षा मे अपने साथियों के साथ अपने उत्तरों को साझा करें। उन पर बातचीत करे। उत्तरों और बातचीत के आधार पर एक विस्तृत प्रतिवेदन तैयार करें

''अध्ययनों से पता चला है कि एकल परिवारों के बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्याएँ अधिक होती है, जबकि जिन परिवारों में माता–पिता दोनो होते है, उन परिवारों के बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्याएँ तुलनात्मक रुप से कम होती है। एकल परिवार के बच्चे शालात्यागी हो जाते है, नशीली दवाओं का सेवन करने लगते है और अपराध की दुनिया में कदम रख देते है। ये सारी बातें इस बात का प्रमाण है कि परिवार में एक पुरुष अभिभावक का होना कितना महत्वपूर्ण है।''

1. उपर्युक्त कथन के अनुसार एकल परिवार क्या है?
2. एकल परिवार के बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के क्या कारण बताए गए है?
3. क्या उपर्युक्त कथन की दलीलें और तर्क कथन की पर्याप्त पुष्टि करते है? नही ंतो कारण स्पष्ट करें।
4. क्या उपर्युक्त कथन पुरुषवादी मानसिकता के पूर्वाग्रह से ग्रस्त है? स्पष्ट करें?

5.2 अध्ययन सामग्री *2*–खिड़की का कांच तोड़ डाला–गिजुभाई

गिजुभाई ने स्कूली शिक्षा संबंधी बहुत से संस्मरण और दृष्टांत लिखे हैं, जो न सिर्फ पठनीय हैं, बल्कि स्कूली जीवन के बारे में गहरी अंतर्दृष्टि देते हैं। इस कहानी में गिजुभाई एक शिक्षक के लिए आलोचनात्मक चिंतन की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। आलोचनात्मक चिंतन के बगैर कोई शिक्षक न सिर्फ अपने छात्रों को समझने में असफल रहेगा, बल्कि वह उनके साथ न्याय भी नहीं कर सकेगा।

रघु चपरासी ने साहब से आकर शिकायत कीः जीवन ने खिड़की का कांच तोड़ डाला।

जीवन को साहब के सामने लाकर खड़ा किया गया। जीवन सीने पर हाथ बॉधे अदब से मुँह नीचा किये साहब के सामने डरता–डरता खड़ा था।

साहब ने उससे कहा : जीवन! इसके लिए तुझे सजा मिलेगी। चार डण्डे खाने पड़ेंगे। सब कक्षाओं में तुझे घुमाया जाएगा और सबों के सामने एक–एक डण्डा पड़ेगा।

जीवन कॉपता–कॉपता यह बात सुनता रहा।

जरा सोच कर साहब जीवन से फिर कहने लगे : जीवन! तुझको सजा देना मेरे लिए जरूरी हो गया है। पर मुझे यह क्यों करनी पड़ रही हे, यह बात तुझे समझानी भी चाहिए।

राघवजी समझदार मास्टर थे। नए जमाने के थे। ट्रेनिंग कॉलेज से शिक्षाशास्त्र के विचारों को उन्होंने बहुत अच्छी तरह से हृदयंगम किया था। उनकी मान्यता थी कि बालक को सजा देने का कारण समझाया जाना चाहिए, अन्यथा सजा देना निष्फल जाता है।

मास्टर साहब कहने लगे : देख जीवन, अगर यह कांच तुम्हारा अपना होता तो तेरे पिता तुझे पीटते। जबकि यह शाला का कांच है, इसलिए यह हमारी अपनी सम्पत्ति तो है नहीं। परायों की चीजों को तोड़ना तो गलत काम ही कहा जाएगा ना।

जीवन बोलाः लेकिन साहब....

राघवजी ने बीच ही में कहा : लेकिन–वेकिन बाद में, एक बार जो मैं कह रहा हूँ वह सुन ले। इस तरह से अगर लड़के शाला का कांच तोड़ेंगे तो कैसे काम चलेगा? कांच तूने तोड़ा, इसके हर्जाने के पैसे तो तेरे पिता को भरने ही पड़ेंगे। ऐसा काम तू फिर से न करें इसकी सजा तो तुझे दी ही जानी चाहिए। इससे दूसरों को भी सबक मिलेगा कि कांच तोड़ने का क्या नतीजा होता है। समझे? इसी कारण से तुझे दण्ड दिया जा रहा है। तुझ से हमें कोई द्वेष–वैर नहीं है। यह काम करना ही महत्व की बात है।

मास्टरजी पूरी बात कह कर चुप हो गए और बोले : अब बता, तू क्या लेकिन–वेकिन कर रहा था?

जीवन बोला : यह सब बिल्कुल सही है। आपने मुझे सजा का कारण बताया, सो ठीक है, पर कांच टूटा कैसे, यह तो आप सुनेंगे ना? कांच टूटने का कारण तो आप देखेंगे ना?

शिक्षक : क्या कारण था? चाहे जो कारण हो, कांच तुम्हीं ने तोड़ा है ना?

जीवन : जी नहीं, कांच मैंने नहीं तोड़ा, बल्कि वह टूट गया।

शिक्षक : यह भी ठीक है। कांच के टूटने की बात तो मूल में सही ही है ना?

जीवन : पर वह कैसे टूटा, यह तो आपको देखना ही चाहिए। फिर चाहे आप मुझे सजा दीजिए!

शिक्षक : अच्छा, बोल! क्या कहना है तुझे?

जीवन : यह बात सच है कि मेरा सिर कांच से टकराया और कांच टूटा। पर असल में रावजी मुझ में आकर गिरा और यह घटना घटी।

शिक्षक : लेकिन रावजी और तुम यों अन्धे होकर बेहोशी में कहॉ भागे जा रहे थे कि रावजी तुझ से आ टकराया?

जीवन : हम दोनों जारों से दौड़ते जा रहे थे।

शिक्षक : कहॉ जा रहे थे?

जीवन : मैं सॅडासी लेने और रावजी लकड़ी लेने।

शिक्षक : इनकी क्या जरूरत पड़ गई?

जीवन : हमारी कक्षा में बिच्छू निकला था और शिवजी मास्टरजी ने कहा कि अरे कोई सॅडासी और दबाने को लकड़ी लाओ। मैं दौड़ा और मेरे पीछे–पीछे रावजी दौड़ा। रावजी जोर से दौड़ते–दौड़ते मुझ में आ गिरा और जल्दबाजी में मैं खिड़की से जा टकराया, और कांचढीला होगा या कौन जाने, वह निकल कर नीचे जा गिरा और टूट गया।

राघवजी मास्टर विचार में खो गएः अब क्या करें? उलझन हो गई। बोलेः जरा ध्यान रख कर तो दौड़ना था?

जीवन : मैं तो बिल्कुल ठीक ही चला जा रहा था, लेकिन पीछे से रावजी का धक्का लगा और मैं खिड़की से जा टकराया। उलटे खिड़की से मेरा सिर टकराया और मेरे माथे पर चोट आई। देखिए, यह गॉठ की सूजन!

राघवजी : पर तुम रावजी की शिकायत क्यों नहीं लेकर आए? और रावजी भी कैसा है– बेअक्ल और जल्दबाज!

जीवन बोला : पर इसमें वह क्या करे? बिच्छू के लिए लकड़ी लाने की हड़बड़ी में वह मुझसे टकरा गया। उसने कोई जान–बूझ कर धक्का थोड़े ही मारा था।

राघवजी और भी उलझन में पड़ गए। बेचारे का सिर फूटा, फिर भी जीवन रावजी से लड़ता नहीं। बल्कि कहता है कि उतावली में रावजी क्या करता? तब मुझे भी क्या ऐसा नहीं करना चाहिए? शाला का कांच बड़ी चीज है या जीवन का सिर? और कांच व सिर किसलिए टूटे? शिवजी मास्टरजी ने कहा था कि सॅडासी और लकड़ी लाओ, लड़के दौड़े। इसमें दोष किसका?

राघवजी बाले : जाओ जीवन! तुझ को सजा नहीं दी जा सकती। जाओ, ऐसा हो ही जाता है कभी–कभी। फिर वे मन ही मन बोले : सजा देने से पहले सजा का कारण समझाते–समझाते सजा न देने का कारण ठीक ही मेरी समझ में आया। यूॅ तो कितनी ही गलत सजाएॅ हो जाती होंगी। आइन्दा सजा देने का कारण पहले समझाया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न

1. स्कूल में खिड़की का कांच तोड़ने की घटना के बारे में निम्न में से किस रवैये को आप समालोचनात्मक चिंतन के ज्यादा अनुकूल पाते हैं, बताएं

क. साहब ने उससे कहा : जीवन! इसके लिए तुझे सजा मिलेगी। चार डण्डे खाने पड़ेंगे। सब कक्षाओं में तुझे घुमाया जाएगा और सबों के सामने एक–एक डण्डा पड़ेगा।

ख. जीवन! तुझको सजा देना मेरे लिए जरूरी हो गया है। पर मुझे यह क्यों करनी पड़ रही हे, यह बात तुझे समझानी भी चाहिए।

ग. लेकिन–वेकिन बाद में, एक बार जो मैं कह रहा हूॅ वह सुन ले। इस तरह से अगर लड़के शाला का कांच तोड़ेंगे तो कैसे काम चलेगा?

घ. पर तुम रावजी की शिकायत क्यों नहीं लेकर आए? और रावजी भी कैसा है– बेअक्ल और जल्दबाज!

ङ. सजा देने से पहले सजा का कारण समझाते–समझाते सजा न देने का कारण ठीक ही मेरी समझ में आया।

2. राघव जी के व्यवहार में आए परिवर्तन में समालोचनात्मक चिंतन की कौन सी बातों का समावेश आप पाते हैं। पठन सामग्री–**1** के आधार पर इस प्रश्न का उत्तर दें।

गतिविधि 1

- इस पाठ में जिस घटना का वर्णन किया है, उससे मिलती–जुलती किसी घटना का पता लगाएं। इसके लिए आप आपस में समूह बना कर बात कर सकते हैं और फिर भी ऐसी घटना का पता नहीं चलता तो डाइट के शिक्षकगणों से या आसपास के स्कूल के शिक्षकों से बात कर सकते हैं।
- घटना का पता लगाने के बाद उसे लिख लीजिए और फिर छोटे–छोटे समूह बनाकर उसका विश्लेषण समालोचनात्मक चिंतन के बिदुओं के अनुसार कीजिए।
- अपने विश्लेषण को बड़े समूह में प्रस्तुत कीजिए और विश्लेषण में प्रयुक्त हुए समालोचनात्मक चिंतन के कौशलों को चिन्हित कीजिए।

5.3 अध्ययन सामग्री–3:आलोचनात्मक बनना सिखाना:जॉन पासमोर

ऑस्ट्रेलिया के जाने–माने दार्शनिक जॉन पासमोर (1914–2004) का यह लेख बताता है कि आलोचनात्मक चिन्तन के मायने क्या हैं और यह किस तरह पूर्वग्रहयुक्त या मानदंड विहीन निंदा से अलग है। वे मानते हैं कि छात्रों को आलोचनात्मक होना सिखाना आसान काम नहीं है। वे कुछ मूल्यों और तरीकों की चर्चा करते हैं, जो आलोचनात्मक होना रिखाने में मददगार हो सकते हैं। कक्षा प्रक्रियाओं में एक शिक्षक के लिए किस तरह की चुनौतियां हो सकती हैं, यह लेख इस सवाल पर भी विचार करता है। पासमोर ने कई किताबें लिखी हैं और ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न विश्वविद्यालयों में दर्शन शास्त्र अध्यापन है।

फिर क्या हमें यह कहना चाहिए कि आलोचनात्मक बनना एक कौशल है जिसे सिखाया जा सकता है जैसे अमूमन कौशल, साधारण अभ्यास के विपरीत प्रशिक्षण द्वारा सिखाए जाते हैं ?बेशक ऐसी किताबें भी हैं जो आलोचनात्मक चिन्तन सिखाने कादावा करती हैं, ठीक उसी तरह जैसे कुछ किताबें हमें वाहन चलाना

सिखाने का भी दावा करती हैं।स्कूली जीवन की स्थितियां जैसी होती हैं उनमें एक शिक्षक के लिएअपने छात्रों के समक्ष शिष्टता, न्याय, सत्कार जैसे गुणों का उदाहरण प्रस्तुत करना कठिन होता है। परन्तु आलोचनात्मक शक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करना तो और भी कठिन होता है। इस दृष्टांत में कठिनाइयां केवल शिक्षक की व्यक्तिगत त्रुटियों से नहीं उभरतीं – उदाहरण के लिए, उसके इस भय से कि वह ऐसी कक्षाको संभालने में असमर्थ है जिसमें आलोचनात्मक शक्ति जग चुकी हो – बल्कि, उसकी रोजगार की स्थितियों से कहीं अधिक उभरती हैं।

बगैर मानदंडों के आलोचना

स्वयं वह शिक्षक, अपने रोजमर्रा के काम में अपरिहार्य रूप से आलोचनात्मक ही होगा – अपने छात्रों की आलोचना करेगा, अपने द्वारा पूछे गए प्रश्नों के छात्रों के उत्तरों की आलोचना करेगा, जो काम छात्र करके दें उसकी आलोचना करेगा, उनके आचरण की, और जिन सिद्धांतों से उनका आचरण निर्देशित होता है उसकी आलोचना करेगा। अगर 'आलोचनात्मक व्यक्ति' से हमारा अर्थ इससे अधिक कुछ नहीं कि वह व्यक्ति जो कुछ उसके सामने आए उसकी कमियों की ओर ध्यान दिलाए, तो फिर एक शिक्षक आलोचनात्मक होने से बच ही नहीं सकता।

इसमें भी कोई शक नहीं कि उसके कई छात्र एक हद तक उसकी नकल भी करेंगे। वे उसके आलोचनात्मक मानदंडों को अपना लेंगे और उन्हें स्वयं अपने तथा अपने सहपाठियों के आचरण पर लागू करेंगे। पर होता यह है कि सामान्यतः शिक्षक अपने छात्रों का ध्यान तयशुदा मानकों से विचलन की ओर आकर्षित करके संतुष्ट हो जाता हैः स्वीकृत विधि से गणित के सवाल हल कर पाने, स्कूल के नियमों का अनुपालन न कर पाने, शेक्सपियर के विषय में सही बातें बता न पाने, फिल्टर पेपर को स्वीकृत तरीके से न मोड़ पाने में उनकी असफलता की आलोचना करेगा। इन सभी पक्षों में वह अपने छात्रों के प्रति बेहद आलोचनात्मक हो सकता है। वह बड़े उत्साह से, बल्कि दुराग्रह से, प्रत्येक उस बिन्दु पर उनकी तब आलोचना कर सकता है जब वे स्वीकृत मानकों से विचलित हों।

आलोचना के जरूरी मूल्य

ऐसा कर वह अपने छात्रों में भी उसी प्रकार का उत्साह, उसी प्रकार की मतांधता जगा सकता है। यह सब वह जिस अर्थ में हम आलोचनात्मक व्यक्ति को फिलहाल ले रहें हैं, उस अर्थ में आलोचनात्मक व्यक्ति हुए बिना भी कर सकता है। शिक्षा की सत्तावादी प्रणालियां सामान्यतः ऐसे ही छात्रों का उत्पादन करती हैं जो बेहद आलोचनात्मक हों पर केवल उन लोगों के प्रति जो मान्यताओं का स्वीकृत नियमों का, स्वीकृत कार्य विधियों का पूर्ण अनुपालन नहीं करते।

इसके विपरीत किसी बालक को आलोचनात्मक बनना सिखाना, उसे उस प्रदर्शन के मूल्य को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने को प्रोत्साहित करता है जिसे करना उसे सिखाया जाता है। यह बात उससे भिन्न है कि उसने प्रदर्शन में उपलब्धि का कौन–सा स्तर हासिल किया है।

जिन समाजों में आलोचना फलती–फूलती औरविकसित होती है उनकी विशेषता यह है कि *वे आलोचना होने पर उस प्रकार के प्रदर्शनों का त्याग कर देते हैं।* उदाहरण के लिए, आलोचना होने पर वे जल्लादों के कौशल स्तर में इजाफा चाहने के बजाय फांसी की प्रथा को ही त्याग देते हैं। *इस अर्थ में जो व्यक्ति आलोचनात्मक हो, उसमें उस प्रकार की पहल करने की शक्ति, स्वतंत्रता, साहस, कल्पनाशीलता होनी चाहिए* जो किसी प्रयोगशाला तकनीकविद के कुशल आलोचक में पूरी तरह नामौजूद हो।

अगर शिक्षक स्वयं आलोचनात्मक हो भी, तब भी उस पर ऐसे सामाजिक दबाव हो सकते हैं कि वह यह स्वीकार ही न करे कि कुछ विश्वासों, कुछ आचरणों, कुछ सत्ताओं को आलोचनात्मक दृष्टि से ठीक से जांचा जा भी सकता है। ए.सी. मैकिन्टायर ने सुझाया था कि 'तार्किक आलोचना' के छानबीन के मूल्य प्रचलित सामाजिक मूल्यों से स्पष्टतः विपरीत होते हैं'। यहां 'प्रचलित' शब्द एक अतिशयोक्ति को छिपा सकता है। किसी भी समाज में तार्किक आलोचनात्मक छानबीन प्रधान सामाजिक शक्ति नहीं होती।

ऐसी छानबीन का प्रत्येक समाज में विरोध होता है। परन्तु समाजों में अंतर होता है। हमारा अपना समाज आलोचनात्मक परख की न केवल कहने मात्रा के लिए प्रशंसा करता है बल्कि कुछ हद तक उसे मूल्यवान भी मानता है। अतः जो शिक्षक आलोचनात्मक शक्ति को प्रोत्साहित करता है वह पूर्णतः एकाकी नहीं होता।

आलोचनात्मक चर्चा की कठिनाई

आलोचनात्मक चर्चा को प्रोत्साहित करने में कठिनाई यह है कि *निश्चित रूप से शिक्षक की भी अनेक ऐसी मान्यताएं होंगी जिनकी समालोचना के लिए वह तैयार न हो* और वह ऐसे कई नियम भीलागू करता ही होगा जिनके विषय में भी ठीक यही कहा जा सकताहै। ये मान्यताएं और नियम उन विषयों से घनिष्ट रूप से जुड़े होसकते हैं जिनकी आलोचनात्मक चर्चा छात्रा खासतौर से करनाचाहते हों। उदाहरण के लिए, यौन (सैक्स) या धर्म तथा राजनीति।अगर शिक्षक इन प्रश्नों पर चर्चा की अनुमति नहीं देता, अगर वहनाराजगी भरी प्रतिक्रिया करता है या स्तंभित नापसंदगी जाहिरकरता है तो छात्रों में आलोचनात्मक वृत्ति/शक्ति प्रोत्साहित करपाने की संभावना भी नहीं रहती।

विज्ञान की पढ़ाई भी आलोचना के बगैर!

हालांकि विज्ञान आलोचनात्मक चिन्तन का सबसे प्रभावशाली उदाहरण है। इसे अक्सर कुछ इस प्रकार पढ़ाया जाता है कि इसकेछात्रा अपनी कल्पनाशीलता या आलोचनात्मक शक्तियों का कतईप्रयोग न करें। दुखद है कि इसे शैक्षिक नियम सा ही मान लिया गयाहै कि सभी विषयों का रुझान निर्देशात्मक स्थिति की ओर है।यह महज दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना मात्रा नहीं, न ही यह किसी साजिश का नतीजा है। जो समस्या हमारे समक्ष है उसे इस प्रकार रखा जा सकता है : हमारी स्कूली प्रणालियों में निर्देश एक बड़ी भूमिका अदा करते हैं। प्रारंभिक चरण से ही बच्चों को आलोचनात्मक चर्चा में भागीदारी करने से परिचित करवाने की जरूरत है।

खोजबीन और मानसिक कसरत के लिए प्रेरित करना

समस्याओं को दो व्यापक श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक तो वे जिनके जवाब शिक्षकों को पता होते हैं, पर छात्रों को नहीं और दूसरी वे जिनके उत्तर शिक्षकों और छात्रों दोनों के पास नहीं होते (यहां यह भी जोड़ना चाहिए कि सामान्यतः छात्रों को समस्या के अस्तित्व की जानकारी तक नहीं होती। शिक्षक के कामों में एक यह भी है कि वह अपने छात्रों को उलझन में डालें)। ज्यादातर समय शिक्षक अपने छात्रों

के समक्ष ऐसी समस्या रखता है जिसका उत्तर दरअसल पहले से ज्ञात हो। उसके छात्रा इस वर्ग की समस्याओं से निपटने की

नियमित विधि का अभ्यास करने के लिए ही आते हैं। अर्थात् वे स्वीकृत प्रक्रियाओं का बुद्धिमान उपयोग करना सीखते हैं। परन्तु शिक्षक को यथासंभव ऐसी समस्याएं सामने रखने पर विशेष बल देना चाहिए जिनके उत्तर ज्ञात न हों या जो विवादास्पद हों। केवल इसी प्रकार वह छात्रों को भविष्य के लिए तैयार कर सकता है।

उलझन का महत्त्व

परन्तु व्यवहार में होता यह है कि कई शिक्षक जानबूझ कर सभी विवादास्पद मुद्दों से कन्नी काटते हैं। ऐसा *आंशिक रूप से तो वेइसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि अगर वे छात्रों कोउलझन में डाल दें और उसे सुलझाएं नहीं तो वे पढ़ा ही नहीं रहेहैं* और अंशतः इसलिए क्योंकि उनमें से कई सत्ता काप्रतिनिधित्व करते हैं, अतः यह मानते हैं कि उलझन में डालना छात्रोंके लिए खराब है। ऐसा करते समय वे यह भूल जाते हैं कि *स्कूलके बाहर के अनुभव वैसे भी छात्रों को उलझन में डालते हैं।* साथ ही विवादास्पद मुद्दों को न उठाना सबके लिए अधिक सुरक्षित और आरामदेह होता है (यह आश्चर्यजनक है कि किसी साधारण–सी कक्षा में ऐसे मुद्दों की कितनी विविधता होती है)।

सच्चाई तो यह है कि छात्र अगर स्कूल छोड़ते समय उलझे हुए न हों तो शिक्षाविदों के रूप में शिक्षक असफल रहे हैं, फिर चाहे वे निर्देश देने वालों के रूप में कितने भी सफल क्यों न रहे हों।फिर भी शिक्षक यह नहीं चाहेगा कि उसके छात्र केवल उलझनों से ही घिरे रहें, हालांकि वह यह जरूर सिखाएगा कि *उलझन में पड़ना अपने–आपमें एक सद्गुण भी हो सकता है*। वह उम्मीद करेगा कि वह छात्रों को यह सिखा सके कि जो सवाल उन्हें उलझाते हैं, उनपर चर्चा कैसे की जाए, उनके समाधान में किस प्रकार के प्रमाणप्रासंगिक हैं। *साहित्य तथा इतिहास की कक्षाएं विवादास्पद मुद्दों की चर्चा में खासतौर से मूल्यवान होती हैं।* इतिहास और साहित्य की कक्षाएं शिक्षक को ऐसे अवसर उपलब्ध करवाती हैं जिनमें वह कई प्रकार की मानवीय गतिविधियों के साथ साहित्य तथा इतिहास पर भी आलोचनात्मक चर्चाएं कर सके। यह कोई नहीं चाहेगा कि साहित्य या इतिहास के सारे पाठ सिर्फ ऐसी ही चर्चाओं में बदल जाएं। परन्तु इतिहास तथा साहित्य के अध्ययन को मानवीय संबंधों की समझ से पृथक रखना भी उतनी ही बड़ी भूल होगी।(स्रोत: शिक्षा विमर्श, मार्च2011,भाषान्तर : पूर्वा कुशवाहा)

बोध प्रश्न

1. आलोचना क्यो जरुरी है?
2. आलोचनात्मक चिंतन की कठिनाइयाँ क्या है?
3. विज्ञान शिक्षण में आलोचना की क्या भूमिका है?
4. लेखक क्यों चाहते है कि छात्रों के मन में उलझन की स्थितियाँ रहे?
5. इतिहास तथा साहित्य के अध्ययन को मानवीय संबंधों की समझ से पृथक रखना बड़ी भूल होगी– इस कथन का क्या तात्पर्य है?

हमने जाना

- समालोचनात्मक चिंतन का आधार तार्किकता है।
- न्यायोचित तर्क करना याने अड़ियल प्रवृत्ति न अपनाते हुए, तर्क की कसौटी पर किसी भी बात को स्वीकार करना।
- विवेकशील होने का तात्पर्य है विचार, मूल्य आदि के प्रति जिम्मेदारी के साथ सोचना और विचार करना।
- समालोचनात्मक चिंतन में निम्नलिखित बातें समावेशित होती हैः

- अलग–अलग विचारों के बीच तार्किक अंतर्सम्बंधों को समझना।
- तर्क, युक्ति या दलील को पहचानना, तर्क गढ़ना और तर्कों का आकलन करना।
- प्रस्तुत किये गए तर्क में असंगति या सामान्य त्रुटियों को ढूंढ निकालना।
- व्यवस्थित और क्रमबद्ध तरीके से समस्याओं का समाधान करना।
- विचारों के महत्व और प्रासंगिकता को परखना।
- अपनी मान्यताओं और मूल्यों के औचित्य पर सोचना विचारना

- समालोचनात्मक चिंतन के कौशलः

- अन्य व्यक्ति या लेखक के द्वारा प्रतिपादित निष्कर्षों की पहचान करना।
- प्रस्तुत तर्क के कारणों व साक्ष्यों को समझ पाना।
- अस्पष्ट भाषा को समझ पाना।
- मूल्य संबंधी मान्यताओं और मूल्यों के द्वन्द को समझना।
- विवरणात्मक मान्यताओं को समझना।
- संख्यात्मक तर्क को जाँचना।
- प्रस्तुत नमूनों और मापन को जाँचना।
- तर्कपूर्ण चिंतन को जाँचना।
- छूट गये तथ्यों को चिह्नित करना।
- बिना पक्षपाती रवैये के अपने स्वयं के मूल्यों को प्रतिस्थपित करना।

डीएलएड प्रथम वर्ष, पेपर 4,इकाई 1

अध्याय 6:आत्मिक शांति, एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास

6.01 परिचय

6.02 उद्देश्य

6.1 अध्ययन सामग्री **1:**आत्मिक शांति, एकाग्रता और ध्यान क्या हैं**:** एक परिचय

6.2 अध्ययन सामग्री 2: बच्चे की अपूर्व एकाग्रताः मारिया माण्टेसरी

6.3 अध्ययन सामग्री 3 **:**ध्यान को जीवन का हिस्सा बना लीजिए

6.4 अध्ययन सामग्री 4: ध्यान**-** जे. कृष्णमूर्ति

6.01 परिचय

शिक्षक तुमने मुझे आधी रोटी का टुकड़ा खिलाया!

एक शिक्षक को रात्रि में सपना आया जिसमें उसने एक विद्यार्थी को आज से पचास वर्ष बाद उससे बात करते हुए देखा विद्यार्थी गुस्से में था और शिक्षक से प्रश्न कर रहा था कि क्यों उसको देश की व्यवस्था के बारे में विस्तार से पढ़ाया गया और उसे बाह्य जगत के बारे में इतना कम क्यों बताया गया? वह गुस्से में इसलिए था कि उसको क्यों नहीं पढ़ाया गया कि जब वह बड़ा होकर जीवन की दौड़ में आएगा तो उसे कैसे वैश्विक परस्पर निर्भरता और सुरक्षा, शांतिऔर गुणवत्ता युक्त जीवन, महामारी, ...

प्राकृतिक संसाधनों की कमी से गुजरना होगा'' ''क्यों उसे इन सब बातों से आगह नहीं किया गया'' कि जो भी मनुष्यों की अंधी दौड़ का हिस्सा बनेगा?

विद्यार्थी ने गुस्से में शिक्षक से चिल्लाते हुए कहा कि आपने मेरे हाथों को महंगी मशीनें चलाने को दीं, मेरी ऑखों के लिए टेलीस्कोप और माइक्रोस्कोप दिया, कानों के लिए रेडियो और टेलीफोन का उपयोग करना सिखाया और मस्तिष्क के लिए कम्प्यूटर का उपयोग करना सिखाया यदि आप मुझे विश्व और बाह्य जगत की चुनौतियों का सामना करने के लिए शिक्षित करते और vvkSjvv मुझे इन कठिनाइयों से निपटने के लिए मानव समूह के लिए प्रेम और करूणा का पाठ पढ़ाते तो मेरे लिए अच्छा होता। (स्रोत– पेरबिल से लिया गया अंश–Jon Ryekingher)

6.02 उद्देश्य :–

(1) इस इकाई से हम सीखेंगे कि शांति किसे कहते हैं और हमें वह कैसे प्राप्त होती है?

(2) इस इकाई से हम सीखेंगे कि शांति की प्रवृत्ति क्या होती है?

(3) आंतरिक शांति क्या है और हम इसे कैसे प्राप्त करेंगे?

(4) इस इकाई में हम अध्ययन करेंगे कि एकाग्रता क्या है?

(5) इस इकाई से हम जानेंगे कि ध्यान क्या है और ध्यान के अभ्यास क्या हैं?

6.1 अध्ययन सामग्री 1:आत्मिक शांति, एकाग्रता और ध्यान क्या हैं: एक परिचय

आत्मिक शांति किसे कहते हैं?

प्रकृति में व्याप्त शांति का अनुभव होता है, जब हम प्रकृति के पास उसके सौंदर्य का आनन्द लेते हैं, जैसे वह पारदर्शी नीला आकाश जो निर्मल और नीरव है भोर में उगने वाला सूर्य जो शांत रहता है। यह अनूठी शांति हमारे पास रहती है, परंतु हम अपने दैनिक जीवन की उलझनों में जीते हुए दैनिक चुनौतियॉ का संघर्ष करते रहते हैं। इस शांति के बावजूद हम अशांत स्थिति में रहते हैं।

बचपन में हम खेलना कूदना और मौज करना चाहते हैं। हम शांति और सौंदर्य से कोई मतलब नहीं रहता है। परंतु जैसे ही हम बड़े हो जाते हैं हम अनेक चीजें चाहने लगते हैं, सुख सुविधा चाहते हैं, अच्छी नौकरी और सद्गुणी होना चाहते हैं। अच्छी नौकरी पाने के लिए हम प्रतिस्पर्धा करते हैं और ताकत वाला पद पाना चाहते हैं। परंतु अंदर ही अंदर हमारी मंशा यह रहती है कि हमें कोई परेशान न करे। हम अपने सुविधा क्षेत्र से बाहर नहीं जाना चाहते, हमएक ही लीक पर चलना चाहते हैं हम नहीं चाहते कि हमारे आराम में कोई व्यवधान हो इसे ही हम शांति समझने लगते हैं। परंतु शांति इन भौतिक सुखों से प्राप्त नहीं होती। शांति को समझने के लिए हमें उस बड़े उपद्रव और असंतोष को समझना होगा जो हमारे भीतर है। अर्थात हमें अंतद्वंद्वों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

जब मनुष्य आनंद की अवस्था में रहता है तो वासतव में वह अशांत रहता है।

परंतु हम अशांत रहना नहीं चाहते हम सदैव शांति की खोज में भौतिक सुविधाऍ जुटाना चाहते हैं, परंतु इससे भी शांति प्राप्त नहीं होती। यदि हमारा सामाजिक स्थान परिवर्तित होता है तो हम प्रतिक्रियावादी या संरक्षणवादी हो जाते हैं और निरन्तर बदलाव के लिए बचते हैं। शांति के लिए हम धर्म का सहारा भी लेते हैं जो हमें यह तसल्ली देता है कि अगले जन्म में हमें शांति प्राप्त होगी। तो वास्तव में शांति क्या है?

शांति, स्वतंत्रता की तरह होती है स्वतंत्रता का अर्थ है किसी चीज पर समर्पित हो कर कार्य करना। कार्य करना ही कार्य का प्रयोजन होता है, अन्य कोई कारण उसमें नहीं हेाता, असफल होना या दंड का भय नहीं होना, और सफलता की आशा नहीं रह जाती है। इसी तरह जिसे शांति कहा जाता है वह द्वंद्व का, व्यवधान का क्रांति का विपरीत नहीं होती।

कभी कभी मन अशांत हो जाने पर हम शांति प्राप्त करने के लिय अकेले जाना चाहते हैं। कहीं दूर भाग जाना चाहते हैं। इसके लिए हम आश्रय पाना चाहते हैं और इसे शांति कहते हैं परंतु यह शांति नहीं है। पलायन है। इस अशांत मन की परेशानियों को समझने का प्रयास करें और पलायन न करें जो है उसकी निंदा नहीं करते हुए उसे देखकर समझने में इन गतिविधियों से भी शांति अस्तित्व में आती है।

आत्मिक शांति कैसे प्राप्त करें :–

आत्मिक शांति प्राप्त करने के लिए हमें समग्र जीवन को समझना होगा। समग्र जीवन को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम स्वयं को समझते हुए रोज मर्रा के क्रियाकलापों के दौरान अपने मन को समझते हुए मन की प्रक्रिया को सामने लाना होगा। यह तभी संभव है जब हम अपने में करूणा और प्रेम की भावना पैदा करें। जीवन को समग्र रूप में देखने का दृष्टिकोण पैदा करें जिससे हमारे द्वारा किये गए क्रियाकलापों को जान सकें। इस प्रकार का स्वज्ञान न तो किसी पुस्तक में पाया जाता है न ही हमसे ये सीखा जा सकता है। जब हमारे हृदय में प्रेम और करूणा का भाव रहता है तो हम हर क्षण स्वयं का निरीक्षण करते हैं एवं अपने आपको समझने लगते हैं तो सत्य प्रकट होता है और इस सत्य से शांति का आगमन होता है।

एकाग्रता क्या है?:

जब हमें किसी विषय में रूचि उत्पन्न होती है तब हम उस विषय के प्रति आकर्षण का अनुभव करते हैं। हम मन से एकाग्रचित्त होने का प्रयास करते हैं। यदि किसी कार्य के प्रति प्रेम करते हैं यह वह कार्य करना अच्छा लगता है तो उस कार्य के प्रति लगाव उत्पन्न हो जाता है।

कार्य से जुड़ाव उत्पन्न होता है और एक अद्भुता ऊर्जा का अनुभव होता है। यह एकाग्रचित्त होने के लक्षण हैं। अर्थात एकाग्रता का अर्थ है अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को एक बिन्दु पर संकेंद्रित करना।

एकाग्रता मन की एक प्रक्रिया है। जो मन के किसी एक केंद्र बिन्दु पर स्थिर रहना चाहती है। परंतु मन के दूसरे भाग इसे अस्थिर करना चाहत हैं। व्यवधान उत्पन्न करते हैं। अर्थात मन को ही एकाग्र करने के लिए मन में एक संघर्ष चलता हरता है। क्या यह संभव है कि बिना व्यवधान के एकाग्रचित्ता हुआ जाए?

एकाग्रता लाने के लिए ध्यान को समझने की आवश्यकता है क्योंकि एकाग्रता ध्यान के अभ्यास के द्वारा ही उत्पन्न की जा सकती है

ध्यान क्या है? और ध्यान के अभ्यास

ध्यान से विशालता का बोध होता है । उसमें जीवन की समग्रता छिपी है । एकाग्रता और आतंरिक शांति का प्राप्त करने का साधन ध्यान है । ध्यान के अभ्यास से ही हम एकाग्रता और शांति प्राप्त कर सकते है ।

ध्यान वह शक्ति और प्रक्रिया है जो हमें प्रकृति की तरफ गुलाम होने से रोकती है । ध्यान वह द्वार है जो हमें जीवन में खुशियों के अनंत द्वार खोलता है । ध्यान की अवस्था तब आती है जब मस्तिष्क को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करना होता है जबकि बहुत से विचार मस्तिष्क में प्रवाहित होते रहते है । ध्यान की अवस्था में मस्तिष्क विचार शून्य हो जाता है और सिर्फ जीवन के संकेत सांसो (Breathing) के द्वारा पता चलता है । इस समय एक ऊर्जा का संचार शरीर में दिखता है । यह ऊर्जा उसी तरह की होती है जब हमारा शरीर निद्रा (Sleep) की अवस्था के बाद अनुभव करता है । निद्रा शरीर की आराम की अवस्था है जबकि ध्यान चेतना की अनुभूति है । ध्यान हमें मानसिक द्वन्द, आंतरिक कमियां और मनोवैज्ञानिक द्वन्दों को दूर करने में सहायता करती है यह हमारे मस्तिष्क को शुद्ध करते हुये हमारे मानसिक द्वन्दों से स्वतंत्र कराती है । ध्यान से मनुष्य अपने आप को अतिर्भूत करता है और यही अवस्था मनुष्य को आत्म चेतना हेतु तैयार करती है । मनुष्य इस चेतना से जीवन के उच्चतर मूल्यों की तरफ तीव्रता से अग्रसर होता है। ध्यान से हमारी आत्मचेतना में वृद्धि होती है जिससे हम आध्यात्मिक पथ की ओर अग्रसर होते है । हमारे अंदर सभी बुराईयां, द्वेष, ग्लानि, क्रोध आदि विषमतायें समाप्त होती जाती है और हम अपने मस्तिष्क व शरीर को एकाग्र करने की ओर आगे बढ़ते है।

बच्चों को सिखाओ

..... ध्यान अपने ही भीतर गहरे शून्य तक उतरने का एक मार्ग है इसलिए यहा कोई सिद्धांत नही । यह कोई सिखावन नही है । वास्तव में यह तुम्हारी आंतरिक क्षमता के प्रति, निर्विचार के प्रति, मन को प्रति तुम्हे जागरूक करता है और यही सर्वोत्तम समय है जब बच्चा अभी बिगड़ नही गया है। .... **ओशो**

ध्यान की अवस्था में मस्तिष्क को विचारहीन अवस्था में लाने का अभ्यास किया जाता है ।

क्रियाकलाप 1 :–

अपनी ऑखे बन्द करके अपनी सासों पर एकाग्र करने का प्रयास करें । इसके पश्चात जिस कक्ष में आप बैठे है उसकी कल्पना करें , अपने कक्ष में उपस्थित वस्तुओं की कल्पना करते हुए अपनी कल्पना का विस्तार करें । 5 मिनट बाद आप अपनी आखें खोले आपको एक अच्छी अनुभूति का अहसास होगा । इस अभ्यास को धीरे–धीरे नियमित रुप से करें ।

बोध प्रश्न :–

- उन वस्तुओ , तथ्यो या घटनाओ की सूची बनाए जिससे आपको आत्मिक शांति प्राप्त होती है?
- आत्मिक शांति के भाग को पढें और 10 पंक्तियो में लिखे कि आपकी समझ किस प्रकार विकसित हुई ?
- आत्मिक शांति , एकाग्रता और ध्यान में क्या सम्बन्ध स्थापित कर सकते है । अपने शब्दो मे व्यक्त करे ?
- '' शिक्षक , तुमने मुझे आधी रोटी का टुकड़ा दिया '' अंश से आप क्या अर्थ निकालते है ? प्रस्तुत करे ?

6.2 अध्ययन सामग्री 2: बच्चे की अपूर्व एकाग्रताः मारिया माण्टेसरी

पहली विलक्षण घटना जिसने मेरा ध्यान आकर्षित किया वह तीन साल की एक छोटी बच्ची से संबंधित थी। वह हमारे ठोस सिलेंडरों के अनुक्रम को ब्लाग में लगाने और उनमें से निकालने का अभ्यास कर रही थी। (ये सिलेंडर अपने छिद्रों में बोतल की डाट की तरह फंसते और निकलते हैं। लेकिन ये क्रमिक आकार के हैं और हरेक अपने ही छिद्र में सही बैठता है।) मैं इस नन्ही सी बच्ची को बड़ी दिलचस्पी के साथ बार–बार अपना अभ्यास दोहराते देखकर दंग रह गई। उसने अपनी कुशलता या रफ्तार में कोई प्रगति नहीं दिखाई; यह एक निरंतर कर्म था। चीजों की गणना करने की अपनी आदत के अनुसार मैंने गिनना शुरू किया कि वह इस अभ्यास को कितनी बार दोहराती है। फिर मैंने देखना चाहा कि उसकी एकाग्रता किस हद तक विघ्न सहन कर सकती है। मैंने टिचर से कहा कि वह अन्य बच्चों को गाने और इधर–उधर आने–जाने के लिए कहे। उन्होंने ऐसा ही किया लेकिन उस नन्ही बच्ची ने एक पल के लिए भी अपना

काम नहीं छोड़ा। फिर मैंने आहिस्ता से उस छोटी कुर्सी को उठाया जिस पर वह बैठी थी और उसे बच्चे सहित मेज पर रख दिया। उसने घुटनों पर रख कर अपने काम में लग गई। जब मैंने गिनना शुरू किया था उसने अपना अभ्यास बयालीस वार दोहराया। फिर वह रूकी मानो किसी सपने से बाहर आई हो और इस तरह मुस्कराई जैसे बहुत खुश हो। उसकी आंखों में चमक थी और उसने अपने चारो ओर नजर दौड़ाई।

ऐसा लगता था कि उसने हमारी उन हरकतों पर ध्यान नहीं दिया था जो हमने उसके काम में विघ्न डालने के लिए की थीं। और अब किसी प्रत्यक्ष कारण के बिना उसका काम समाप्त हो गया था। क्या समाप्त हुआ था और क्यों?

यह बच्चे के अज्ञात मन की गहराई की पहली झलक थी। वह एक बहुत नन्ही बच्ची थी। इस उम्र में ध्यान एक बस्तु से दूसरी की तरफ जाता है और उसे केंद्रित नहीं किया जा सकता। फिर भी वह ऐसी एकाग्र हो गई थी कि उसकी अंतर्रात्मा ने किसी भी बाहरी वस्तु की पहुंच से अपने आप को हटा लिया था। उसकी एकाग्रता हाथों के एक लय में संचालन के साथ बंधी थी जो वैज्ञानिक रूप से त्रुटिहीन उपकरण से प्रेरित थी।

इस तरह के तथ्य कई बार सामने आए । हर बार बच्चे अपने काम के बाद शांत, जीवंत नजर आए उनके चेहरे का भाव ऐसा था, मानो उन्होंने परम आनंद का अनुभव किया हो।(स्रोतःk मारिया मॉण्टेसरी, बचपन का रहस्य, अनु. –सुशील कपूर, आकार, दिल्ली, 2013)

6.3 अध्ययन सामग्री 3: एकाग्रता की शक्तिः विवेकानन्द

मनुष्य और पशु में मुख्य अन्तर उनके मनों की एकग्रता की शक्ति में है। किसी भी प्रकार के कार्य में सारी सफलता इसी एकाग्रता का परिणाम है। प्रत्येक व्यक्ति एकाग्रता के बारे में कुछ–न–कुछ जानता है। हम इसके परिणाम नित्य देखते हैं। कला, संगीत आदि में उच्च उपलब्धियॉ मन की एकाग्रता के परिणाम हैं। पशु में मन की एकाग्रता की शक्ति बहुत कम होती है। जो लोग पशुओं को कुछ सिखाते हैं, उन्हें पता है कि पशु को जो बात सिखायी जाती है, उसे वह लगातार भूलता जाता है। वह एक बार में किसी एक वस्तु पर देर तक चित्त को एकाग्र नहीं रख सकता। मनुष्य और पशु में यही अन्तर है– मुनष्य में चित्त की एकाग्रता की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक है। एकाग्रता की शक्ति में अन्तर के कारण ही एक मनुष्य दूसरे से भिन्न होता है। छोटे–से–छोटे आदमी की तुलना ऊॅचे–से–ऊॅचे आदमी स करो। अन्तर मन की एकाग्रता की मात्रा में होता है। बस, यही अन्तर है।

प्रत्येक व्यक्ति का मन कभी–न–कभी एकाग्र हो जाता है। जो चीजें हमें प्रिय होती हैं, उन पर हम मन लगाते हैं और जिन चीजों पर हम मन लगाते हैं, वे हमें प्रिय होती हैं। कौन ऐसी माता होगी, जो अपने कुरूप–से–कुरूप बच्चे के मुख से प्रेम न करती हो? उसके लिये वह मुखड़ा दुनिया में सुन्दरतम है। वह उससे प्रेम करती है, क्योंकि उस पर अपने मन को एकाग्र करती है और यदि सब लोग उसी चेहरे पर अपने मन को एकाग्र करें, तो सब उससे प्यार करने लगेंगे। सभी को वह चेहरा सुन्दरतम प्रतीत होने लगेगा। हम जिन्हें प्यार करते हैं, उन्हीं चीजों पर अपना मन एकाग्र करते हैं।

ऐसी एकाग्रता में सबसे बड़ी अड़चन यह है कि हम अपने मन को वश में नहीं करते, उल्टे उसी के वश में हम रहते हैं। माना हमसे बाहर की कोई वस्तु मन को अपनी ओर खींच लेती है और जब तक चाहे पकड़े रहती है। सुरीली तान सुनने या सुन्दर चित्र देखने पर हमारा मन दृढ़तापूर्वक उसकी पकड़ में आ जाता है। हम वहॉसे उसे हटा नहीं सकते।

यदि मैं तुम्हारे पसनद के विषय पर एक अच्छा व्याख्यान दूॅ, तो तुम्हारा मन मेरे वक्तव्य पर एकाग्र हो जायेगा। तुम न चाहो, तो भी मैं तुम्हारे मन को तुमसे बाहर निकाल करके उस विषय में जमा देता हूॅ। इसी प्रकार हमारे न चाहते हुए भी हमारा ध्यान खिंच जाया करता है और हमारा मन विभिन्न वस्तुओं पर एकाग्र होता रहता है। हम इसे रोक नहीं सकते।

अब प्रश्न यह है कि क्या यह एकाग्रता विकसित की जा सकती है और क्या हम मन के स्वामी बन सकते हैं? योगियों का कहना है– हॉ। योगी कहते हैं कि हम मन पर पूर्ण नियंत्रण कर सकते है। मन की एकाग्रता बढ़ाने से नैतिक धरातल पर खतरा है और वह है किसी वस्तु पर मन एकाग्र कर लेना और फिर इच्छानुसार उससे हटा लेने में असमर्थ होना। इस अवस्था में बड़ा कष्ट होता है। हमारे प्रायः सभी क्लेशों का कारण हममें अनासक्ति की क्षमता का अभाव है। अतः मन की एकाग्रता की शक्ति के विकास के साथ साथ हमें अनासक्ति की क्षमता का भी विकास करना होगा। सब ओर से मन को हटाकर किसी एक वस्तु में उसे आसक्त करना ही नहीं, वरन् एक क्षण में उससे निकाल कर किसी अन्य वस्तु में लगाना भी हमें अवश्य सीखना चाहिये। इसे निरापद बनाने के लिए इन दोनों का अभ्यास एक साथ बढ़ाना चाहिए। यह मन का सुव्यवस्थित विकास है।

मेरे विचार से तो शिक्षा का सार तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि मन की एकाग्रता प्राप्त करना है। यदि मुझे फिर से अपनी शिक्षा आरम्भ करनी हो और इसमें मेरा वश चले, तो मैं तथ्यों का अध्ययन कदापि न करूँ। मैं मन की एकाग्रता और अनासक्ति की क्षमता अर्जित करूँगा और उपकरण के पूरी तौर से तैयार हो जाने पर उससे अपनी इच्छानुसार तथ्यों का संकलन करूँगा। बच्चे में मन की एकाग्रता तथा अनासक्ति का सामर्थ्य एक साथ विकसित होनी चाहिए।

ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है एकाग्रता।

मन की शक्तियों को एकाग्र करने के सिवा अन्य किस विधि से संसार के ये सब ज्ञान उपलब्ध हुए हैं? यदि केवल इतना ज्ञात हो गया कि प्रकृति के द्वार को कैसे खटखटाया जाए – उस पर कैसे दस्तक दी जाए; तो बस, प्रकृति अपने सारे रहस्य खोल देती है। उस आघात की शक्ति और तीव्रता एकाग्रता से ही आती है। मानव–मन की शक्ति असीम है। वह जितना ही एकाग्र हाता है, उतनी ही उसकी शक्ति एक लक्ष्य पर केंद्रित होती है; यही रहस्य है।

एकाग्रता – प्राप्ति का उपाय – अभ्यास

हम लोग जितने अधिक शान्त होते हैं, उतना ही हमारा कल्याण होता है और हम काम भी अधिक अच्छी तरह कर पाते हैं। भावनाओं के अधीन हो जाने पर हम अपनी शक्तियों का अपव्यय करते हैंख् अपनी स्नायुओं को विकृत कर डालते हैं, मन को चंचल बना डालते हैं, लेकिन काम बहुत कम कर पाते हैं। जिस शक्ति को कार्यरूप में परिणत होना उचित था, वह वृथा भावुकता मात्र में परिणत होकर नष्ट हो जाती है। जब मन अत्यन्त शान्त और एकाग्र रहता है, केवल तभी हमारी पूरी शक्तिसत्कार्य में व्यय होती है। यदि तुम कभी जगत् के महान् कार्यकुशल व्यक्तियों की जीवनी पढ़ो, तो देखेंगे कि वे अद्भुत शान्त प्रकृति के लोग थे। कोई भी चीज उनके चित्त की स्थिरता को भंग नहीं कर पानी थी। अतः जो व्यक्ति शीर्घ ही क्रोध, घृणा या किसी अन्य आवेग से अभिभूत हो जाता है वह कोई काम नहीं कर पाता, अपने आपको चूर–चूर कर डालता है और कुछ भी व्यावहारिक नहीं कर पाता। केवल शान्त, क्षमाशील स्थिर–चित्त व्यक्ति ही सर्वाधिक काम कर पाते हैं।

6.3 अध्ययन सामग्री 3 :ध्यान को जीवन का हिस्सा बना लीजिएः

यदि मन–मस्तिष्क में व्याकुलता नहीं है, तो आप ध्यान में हैं।

यदि भूत और भविष्य दोनों की चिंता से मुक्त होकर केवल वर्तमान में मौजूद हैं, तो आप ध्यान में हैं।

यदि हर प्रकार की हिचक से मुक्त हो कर, हर उम्मीद को, हम कामना को त्याग चुके हैं, तो आप ध्यान में हैं।

यदि हर प्रकार की हिचक से मुक्त हो कर, हर उम्मीद को, हम कामना को त्याग चुके हैं, तो आप ध्यान में हैं।

ध्यान कोई विशेष कर्म नहीं है, सच तो यह है कि आप जितने कर्मविहीन होते हैं, उतने ही ध्यान में होते हैं, ध्यान में आते ही आप भूत और भविष्य से तो छूटते ही हैं, क्रोध और कामना से भी छूट जाते हैं, ध्यान याने केवल अभीके क्षण, अभी के पल को स्वीकार कर लेना, उसी को अधिकतम जी लेना, ध्यान में आप अंतरिक्ष में उड़ान–सी भरते हैं, जहां न सूर्योदय है, न सूर्यास्त, अंतरिक्ष में समय बीतता नहीं है, केवल उपस्थित रहता हे, जब समय बीतता ही नहीं, तब अंतरिक्ष में उम्र कैसे बढ़े! जिसने अपनी चेतना को अंतरिक्ष में पहुंचाना सीख लिया,ख उसकी उम्र सचमुच नहीं बढ़ती, बिला शक उसके जिस्म की उम्र बढ़ती जाती है, यह अपनी उम्र क्या है? आपने कई बार महसूस किया होगा कि आपके भीतर कुछ है, जो जस–का–तस है, इतने बरसों में भी जिस की उम्र नहीं बढ़ी, उम्र की पकड़ से परे रहता यह कुछ ही आपकी आत्मा है, आपकी चेतना है, उसी के सम्पर्क में आपको आना है, यही ध्यान है, यही जीवन की सार्थकता है। (स्रोतः ध्यान का अध्याय– श्री श्री रविशंकर जी, नवनीत अप्रेल 2007 से)

बोध प्रश्न–

1. प्रस्तुत गद्यांश में श्री श्री रविशंकर जी ध्यान को जीवन से जोड़ने को क्यों कहते हैं।
2. क्या समग्र जीवन के विकास के लिए एकाग्रता और ध्यान आवश्यकता है?

6.4 अध्ययन सामग्री 4:ध्यान- जे. कृष्णमूर्ति

ध्यान के लिए आपको सर्वप्रथम इसकी नींव रखनी चाहिए, व्यवस्था की नींव, जिसका अर्थ सदाचार और सच्चाई है– जिसका अर्थ प्रतिष्ठा या सामाजिक नैतिकता नहीं है। सामाजिक नैतिकता बिलकुल ही नैतिकता नहीं है। जिस व्यवस्था की हम बात कर रहे हैं, वह अव्यवस्था को समझने से उत्पन्न होती है और यह एक बिलकुल ही भिन्न चीज है। जब तक द्वंद है तब तक बाह्य और आंतरिक रूप से अव्यवस्था का अस्तित्व भी रहेगा।

यदि हमें इस प्रश्न की जाँच–पड़ताल करनी है कि ध्यान क्या है, तो दो अत्यावश्यक चीजें पूर्णतः समझ ली जानी चाहिए। पहली चीज यह कि खोजने का कोई अर्थ और मूल्य नहीं है, दूसरी चीज यह कि उस व्यवस्था का जन्म होना चाहिए जो अव्यवस्था की समझ है और अव्यवस्था का कारण है : नियंत्रण और इसमें निहित द्वंद्व तथा वह विरोध और विसंगति जो द्रष्टा और दृश्य के बीच उत्पन्न होती है।

आपको अत्यन्त कठिन परिश्रम करना चाहिए ताकि आपको पता लग सके कि आपके मन में गतिविधि क्या है, यह कैसे कार्य करता है तथा क्या है इसकी स्वकेन्द्रित क्रियाएँ– अर्थात् 'मैं' और 'मैं नहीं' का विभाजन। आपको स्वयं से पूर्ण परिचित होना चाहिए। वे दाँवपेंच जिनका प्रयोग मन स्वयं के ऊपर करता है, वे मोह और भ्राँतियाँ जिनमें मन जीता है तथा इसके समस्त रोमानी खयालों की प्रतिमाएँ और कल्पनाएँ– इन सभी से आपको पूर्ण परिचित होना चाहिए। जो मन भावुकता में समर्थ है, वह प्रेम में समर्थ नहीं है। भावनाएँ वस्तुतः क्रूरता, निष्ठुरता और हिंसा को जन्म देती है, प्रेम को जन्म नहीं देती।

अपने भीतर गहराई में इसे स्थापित करना बिलकुल कठिन है; इसके लिए प्रचंड अनुशासन चाहिए– जिसका अर्थ है स्वयं के भीतर जो कुछ चल रहा है उसका अवलोकन करते हुए सीखना। यह अवलोकन सम्भव नहीं है, यदि आपके पास किसी प्रकार पूव्राग्रह, निष्कर्ष या नियम है, जिसके अनुसार आप अवलोकन कर रहे हैं। यदि आप मनोवैज्ञानिक के सुझाव के अनुसार अवलोकन कर रहे हें, तो आप वस्तुतः स्वयं का अवलोकन नहीं कर रहे हैं, इसलिए तब स्वयं के बारे में जानना घटित नहीं हो रहा है।

आपके पास ऐसा मन होना चाहिए, जो पूर्णतः अकेले होने में समर्थ हो तथा जो दूसरे व्यक्तियों के अनुभवों और प्रचार से बोझिल न हो। बुद्धत्व का आगमन किसी नेता या गुरू द्वज्ञरा नहीं होता; आपके भीतर जो कुछ है, उसकी समझ द्वारा ही इसका आगमन होता है। अतः स्वयं से पलायन करने का प्रयास न करें। आपके मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में वस्तुतः जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसे मन को समझना होगाद्ध उसके प्रति मन को सजग होना चाहिए– बिना किसी विकृति और चुनाव के, बिना किसी कटुता और अप्रसन्नता के, बिना किसी व्याख्या या समर्थन के, इसे मात्र सजग होना चाहिए।

अवलोकन और अनुभव में बहुत बड़ा फर्क है। वास्तविक अवलोकन में कोई अवलोकनकर्त्ता नहीं होता, केवल अवलोकन की क्रिया होती है। अवलोकन की इस क्रिया में कोई ऐसी सत्ता नहीं है जो अवलोकन करती है तथा जो स्वयं को अवलोकित वस्तु से पृथक समझती हैं अवलोकन उस तरह की खोजबीन से पूर्णतः भिन्न है, जिसमें विश्लेषण निहित है। विश्लेषण में सदा कोई विश्लेषक होता है और कोई विशिष्ट चीज होती है। खोजबीन में भी प्रायः एक ऐसी सत्ता होती है जो खोजबीन का कार्य करती है। अवलोकन में सीखने का एक सतत प्रवाह होता है– इस प्रकार के सीखने में आपको कुछ संग्रह करना नहीं पड़ता। आशा है कि आप इस फर्क को देख रहे हैं। दूसरे प्रकार का जो सीखना है, उसमें आप ज्ञान का संग्रह करते हैं और फिर उसी संग्रहित ज्ञान से सोचते–विचारते और कार्य करते हैं। आप किसी चीज की जाँच–पड़ताल विवेकपूर्वक तथा तर्कसंगत एवं बुद्धिसंगत ढंग से कर सकते हैं, किन्तु 'अवलोकनकर्ता', के बिना अवलोकन करना एक बिलकुल ही भिन्न चीज है।

ध्यान क्या है? ध्यान के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है, बहुत सारे ग्रन्थ लिखे गये हैं इस विषय पर 'बड़े–बड़े योगी (पता नहीं, वे बड़े हैं भी या नहीं) आते हैं और वे आपको सिखाते हैं कि ध्यान कैसे करें। सारा एशिया ध्यान की चर्चा करता है, जो उनकी एक आदत है, जैसे ईश्वर या किसी और चीज में विश्वास करना एक आदत है। वे प्रतिदिन एक शांत कमरे में दस मिनिट बैठकर ध्यान करते हैं, वे एक प्रतिमा पर मन को एकाग्र करने की कोशिश करते हैं– वह प्रतिमा स्वयं उनकी रचित हो सकती है। उस दस मिनिट के दौरान वे मन को नियंत्रित करने की कोशिश करते हैं; मन अधर–उधर भागना चाहता है और वे इसके साथ लड़ते हैं– उनका यह खेल निरन्तर चलता रहता है और इसी को वे ध्यान कहते हें।

यदि ध्यान के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते हैं तो आपको यह पता लगाना होगा कि वस्तुततः यह क्या है, और सम्भव है कि यह आपको किसी चीज तक नहीं ले जाए, या सम्भव है क यह आपको उस चीज तक ले जायें जो सबकुछ है। आपको स्वयं यह प्रश्न करना चाहिए, बिना किसी अपेक्षा और प्रत्याशा के।

मन, जो अनवरत प्रलाप करता रहता है, जो विचारों और धारणाओं को प्रक्षेपित करता है, जो सतत द्वंद्व विसंगति और तुलना में जीता है– इस मन का अवलोकन करने के लिए वस्तुतः मुझे अत्यन्त शांत हो जाना चाहिए। आप और कुछ कह रहे हैं और उसे मैं सुनना चाहूँ, तो यह आवश्यक है कि मैं उस ओर ध्यान दूँ, मैं उस क्षण बकबक न करूँ, मैं उस क्षण किसी और चीज के बारे में न सोचूँ, आप जो कह रहे हैं उसकी तुलना मैं उससे न करूँ जो मैं पहले से जानता हूँ अर्थात मैं पूर्ण रूप से आपको सुनूँ और यह तभी सम्भव है जब मेरा मन शांत, सावधान और मौन हो।

हिंसा के सम्पूर्ण ढाँचे को साफ–साफ देखना अत्यावश्यक है। हिंसा को देखने के क्रम में ही मन पूर्णतः स्थिर हो जाता है। आपको एक स्थिर मन का 'विकास' नहीं करना है। जो व्यक्ति एक स्थित मन का विकास करने में लगा है वह समय के क्षेत्र में कार्यरत है और इसी क्षेत्र में वह अपनी उपलब्धि की आशा रखता है। यही हमारी कठिनाई है। ध्यान सिखाने वाले लोग कहते हैं, "अपने मन को नियंत्रित करो, अपने मन को पूर्णतः शांत कर लो।" आप इसे नियंत्रित करने की कोशिश करते हैं और फलतः इससे लड़ते रहते हैं। इसे नियंत्रित करते हुए आप तीस–चालीस वर्ष बिता देते हैं, परन्तु जो मन अवलोकन कर रहा है, वह नियंत्रण नहीं करता और न ही सतत स्वयं के साथ लड़ता है।

देखने और सुनने की क्रिया ही सावधानी है; इसकी आपको साधना नहीं करनी है; यदि आप साधना रकते हैं तो आप तत्काल असावधानी की अवस्था में आ जाते हैं। आप सावधान हैं और आप पाते है कि आपका मन भटककर दूर जा रहा है, तो इसे भटकने दीजिए, किन्तु आप जानिए कि मन असावधान है। इस असावधानी के प्रति यह सजगता ही सावधानी है। मन की इस असावधान दशा के साथ लड़िए मत, इस पर जबरदस्ती करने के लिए यह मत कहिए कि मैं सावधान होकर ही रहूँगा। यह तो बचकानी बात होगी। बस आप जानिए कि आप असावधान हैं; इस तथ्य के प्रति चुनावरहित रूप से सजग रहिए कि आप असावधान हैं और हैं तो क्या हुआ, यानी इसके लिए चिन्ता मत कीजिए एवं असावधानी की इस अवस्था में, असावधानी के इन लक्षणों में यदि आप कुछ कर बैठें, तो उस क्रिया के प्रति सजग रहित। क्या आप इसे

समझ रहें हैं? यह बिलकुल सीधा और सरल है। यदि आप इसे करें, तो यह बात एकदम साफ हो जाएगी– स्वच्छ जल की तरह साफ।

मन का मौन अपने आप में सौंदर्य है। किसी चिड़िया की चहचहाट को सुनना, किसी मनुष्य की आवाज को सुनना, किसी धर्मप्रचारक या राजनीतिज्ञ की बातों को सुनन अर्थात् प्रचार के समस्त शोरगुल को पूर्ण मौन के साथ सुनने का अर्थ है बहुत कुछ सुन पाना, बहुत कुछ देख पाना। यदि आपका शरीर भी पूर्णतः शांत और स्थिर नहीं है, तो ऐसा मौन सम्भव नहीं है। यह अवयव संस्थान और इसकी समस्त स्नायविक प्रतिक्रियाएँ – अंकों का चुलबुलापन, आंखों की चंचलता, उँगलियों की अनवरत गति – अर्थात् शरीर और इसकी समस्त अशांति एवं बेचैनी को पूर्णतः शांत होना चाहिए। क्या आपने कभी बिलकुल शांत और स्थिर बैठने की कोशिश की हे, इस ढंग से कि आँखों की या शरीर के अन्य अंगों की एक भी हरकत या हलचल न हो? दो मिनट इसे करें। इस दो मिनट में सारा कुछ प्रकट हो जाता है– यदि आप देखने की कला जानते हैं।

शरीर के शांत और स्थिर होने के कारण मस्तिष्क की ओर रक्त का प्रवाह अधिक हो जाता है, किन्तु जब आप झुककर या बेढंगा होकर बैठते हैं, तो मस्तिष्क की ओर रक्त का जाना बहुत कठिन हो जाता है। आपको यह सब अवश्य जानना चाहिए, किन्तु ध्यान का दूसरा पहलू यह है कि आप कोई भी काम करते हुए ध्यान कर सकते हैं, जैसे आप बस में बैठे हों या गाड़ी चला रहे हों। यह भी कितनी अद्‌भुत चीज है कि आप गाड़ी चलाते समय भी ध्यान कर सकते हैं– मेरा मतलब है कि उस समय आप सतर्क और सचेत हो सकते हैं। शरीर की एक अपनी प्रज्ञा होती है, जिसे विचार प्रायः नष्ट कर डालता है। विचार सुख की खोज करता है और इस प्रकार यह हमें अतिभोग की ओर ले जाता है। यह अतिभोग जरूरत से ज्यादा खाने का हो या कामवासना में लिप्त रहने का विचार शरीर को किसी काम को करने के लिए बाध्य करता हैं यदि शरीर आलस्य का अनुभव कर रहा है, तो विचार शरीर को आलस्य छोड़ने के लिए बाध्य करता है, आलस्य पर काबू पाने के लिए विचार दवा खाने की सलाह देता है। इस ढंग से शरीर की जो जन्मजात सहज प्रज्ञा है वह नष्ट हो जाती है और शरीर असंवेदनशील हो जाता हैं आपके पास वृहत् संवेदनशीता होनी चाहिए, अतः आपको अपने खाने–पीने का निरीक्षण करना होगा कि आप क्या खाते–पीते हैं तथा इस बात का भी निरीक्षण करना होगा कि जब आप ज्यादा खा लेते हैं तो क्या होता है। जब आपके पास परम संवेदनशीलता होती है, तो प्रज्ञा के साथ–साथ प्रेम का भी प्रादुर्भाव होता है– प्रेम तब आनन्द हैद्ध प्रेम तब समयातीत है।

मौन क्या है? आप जिसे मौन कहते हैं, क्या वह शोर के नियंत्रण और दमन द्वारा उत्पन्न अंतराल है? मस्तिष्क सदा सक्रिय रहता है। यह सदा अपने शोरगुल के साथ ही विभिन्न प्रेरणा और प्रोत्साहन का उत्तर देता है। अतः आप मौन किसे कहेंगे? क्या आप प्रश्न को समझ रहे हैं? क्या स्वनिर्मित शोर की समाप्ति ही मौन है? क्या विचार के अनवरत् प्रलाप तथा विचार की शाब्दिक अभिव्यक्ति की समाप्ति ही मौन है? जब विचार की शाब्दिक अभिव्यक्ति बंद हो जाती है और विचार ठहर जाता है, तब भी आप पायेंगे कि मस्तिष्क सक्रिय है। अतः क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मौन न केवल शोर का अन्त है बल्कि समस्त गतिविधि की पूर्ण समाप्त है? आप इसकी छानबीन करें और इसका अवलोकन करें कि आपका मस्तिष्क, जो लाखों वर्ष के संस्कार का परिणाम है, किस प्रकार प्रत्येक प्रेरणा एवं प्रोत्साहन का तत्क्षण उत्तर दे रहा है। आप यह पता लगाएँ कि मस्तिष्क की कोशिकाएँ– जो अनवरत प्रलाप कर रही हैं, उत्तर दे रही हैं, अर्थात् जो निरन्तर सक्रिय हैं– शान्त हो सकती हैं या नहीं।

क्या मन, मस्तिष्क और सम्पूर्ण अवयव संस्थान अर्थात् यह समग्र मनः शारीरिक सत्ता पूर्णतः शान्त हो सकती है– बाध्य होकर नहीं, जोर जबरदस्ती के कारण नहीं, और न ही इस लोभ के कारण कि यदि मैं पूर्णतः शांत हो जाऊँ तो मुझे सबसे अद्‌भुत और लिक्षण अनुभव प्राप्त होगा? आप इसकी जाँच पड़ताल करें और यह पता लगाएं कि आपका मौन महज एक तात्कालिक परिणाम है या इसका जन्म आपके द्वारा रखी गई ध्यान की नींव पर हुआ है। यदि आपने वह नींव नहीं रखी है जो प्रेम है, जो सद्‌गुण है, जो सच्चाई है, जो सौन्दर्य है, जो आपके समस्त प्राणों की गहराई में मौजूद करूणा है– यदि आपने ऐसी नींव अभी नहीं

रखी है, तो आपकामौन शोर का ही अन्त है।(स्रोत:जे. कृष्णमूर्ति, हिंसा से परे, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, वाराणसी, 1997)

बोध प्रश्न

1. शरीर की जन्मजात प्रज्ञा क्या है?
2. जीवन में मौन का क्या महत्त्व है?
3. शांत और स्थिर होकर बैठने से क्या होता है?
4. असावधानी के क्या लक्षण है?

हमने जाना

- आत्मिक शांति प्राप्त करने के लिए हमें समग्र जीवन को समझना होगा। समग्र जीवन को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम स्वयं को समझते हुए रोज मर्रा के क्रियाकलापों के दौरान अपने मन को समझते हुए मन की प्रक्रिया को सामने लाना होगा।
- एकाग्रता का अर्थ है अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को एक बिन्दु पर संकेंद्रित करना।
- निद्रा शरीर की आराम की अवस्था है जबकि ध्यान चेतना की अनुभूति है ।
- ध्यान हमें मानसिक द्वन्द, आंतरिक कमियां और मनोवैज्ञानिक द्वन्दों को दूर करने में सहायता करती है यह हमारे मस्तिष्क को शुद्ध करते हुये हमारे मानसिक द्वन्दों से स्वतंत्र कराती है ।
- ध्यान कोई विशेष कर्म नहीं है, सच तो यह है कि आप जितने कर्मविहीन होते हैं, उतने ही ध्यान में होते हैं, ध्यान में आते ही आप भूत और भविष्य से तो छूटते ही हैं, क्रोध और कामना से भी छूट जाते हैं।
- ध्यान के लिए प्रचंड अनुशासन चाहिए– जिसका अर्थ है स्वयं के भीतर जो कुछ चल रहा है उसका अवलोकन करते हुए सीखना।
- वास्तविक अवलोकन में कोई अवलोकनकर्त्ता नहीं होता, केवल अवलोकन की क्रिया होती है।
- मन का मौन अपने आप में सौंदर्य है।
- आप कोई भी काम करते हुए ध्यान कर सकते हैं, जैसे आप बस में बैठे हों या गाड़ी चला रहे हों।

डीएलएड, पेपर 4– स्वयं की पहचान इकाई 1– स्वयं की क्षमता

अध्याय 7–अन्तर्द्वन्दों का समाधान

7.01 परिचय

7.02 उद्देश्य
7.1 अन्तर्द्वन्द की अवधारणा
7.2 अंतर्द्वन्दों के प्रकार
7.3 द्वन्दों का समाधान
7.4 द्वन्दों का निराकरण

7.01 परिचय

हमारा जीवन गतिशील है। जीवन में परिवर्तन हमेशा होता रहता है। जीवन में कई बार ऐसी स्थिति आ जाती है कि व्यक्ति पशोपेश में पड़ जाता है कि अब क्या किया जाए। एक कहावत में कहा गया है कि 'उगलत लीलत पीर घनेरी' यानि जीवन की एक ऐसी स्थिति जब किसी बात को उगल देना भी मुश्किल हो और निगल पाना भी मुश्किल हो। अर्थात् ऐसी स्थिति जब हमारा मन एक बार कहे कि इस कार्य को करना चाहिए और तुरंत हमारा ही मन कहे कि हमें यह कार्य करना ही नहीं चाहिए। यही है अन्तर्द्वन्द की स्थिति, जिसमें व्यक्ति स्वयं को दबाव की स्थिति में पाता है और निर्णय लेने में कठिनाई का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति को अन्तर्द्वन्द की स्थिति कहते हैं। इस इकाई में हम अन्तर्द्वन्द की अवधारणा, उसके प्रकार और समाधान के बारे में जानेंगे।

7.02 उद्देश्य :

इस इकाई का अध्ययन कर हम जानेंगे कि

- अन्तर्द्वन्द की अवधारणा क्या है?
- व्यक्ति की किन प्रवृत्तियों के कारण अन्तर्द्वन्द की स्थिति पैदा होती है?
- अन्तर्द्वन्दों के प्रकार क्या हैं?
- अन्तर्द्वन्दों का समाधान कैसे हो?

7.1 अन्तर्द्वन्द की अवधारणा :–

द्वंद को दो क्षेत्रों में देखा जा सकता है। एक तो प्राकृतिक और सामाजिक क्षेत्र में द्वन्द ओर दूसरा एक व्यक्ति के स्वयं का अन्तर्द्वन्द। प्रकृति के साथ मनुष्य को द्वन्द बहुत पुराना है। समाज के गठन बसाहटों के निर्माण आदि से प्रकृति का व्यापक पैमाने पर अतिक्रमण हुआ और नये परिवेश का सृजन हुआ है। इसके अच्छे और बुरे दोनों परिणाम हैं।

सामाजिक क्षेत्र में द्वन्द दमन या उत्पीड़न के ज़रिए उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति या सामाजिक समूह, दूसरे व्यक्ति या सामाजिक समूह का दमन अपने स्वार्थी उद्देश्यों, कपटतापूर्ण सरोकारों या कुरूचि के चलते करते हैं। इससे इनके बीच द्वन्दपूर्ण स्थिति उत्पन्न होती है। यह स्थिति अत्यन्त अमानवीय है। हमारे देश में जाति, लैंगिक–भेदऔर धन के आधार पर ऐसे दमन किए जाते हैं। दलितों, स्त्रियों, गरीबों

आदि को अपने सम्मान, गरिमा, स्वतत्रंता तथा सुरक्षा पर खतरा पैदा किया जाता है। जब तक दलित, गरीब, स्त्री, दमन को स्वीकार करते रहते हैं, द्वन्द की स्थिति नहीं बनती। लेकिन जैसे ही उनके विरोध के स्वर उभरने लगते हैं, समाज में द्वन्द की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति का दोनों ही पक्षों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। इस तरह के द्वन्द को हम एक ऐसी असहमति के रूप में परिभाषित कर सकते हें, जिनमें दोनें पक्ष एक–दूसरे की आवश्यकताओं, प्राथमिकताओं, रूचियों और सरोकारों को अपने लिए खतरा मानते हैं।

तीसरे किस्म का द्वन्द व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व के अंदर उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में द्वन्द हमारे व्यक्तित्व के दो पक्षों के बीच होता है। आम तौर पर यह द्वन्द हमारे विवेक और तर्कपूर्ण चिंतन के साथ हमारी भावनाओं और संवेगों के टकराहट की वजह से पैदा होता है। प्रायः हमारे व्यक्तित्व के द्वन्द भी हमारी सामाजिक स्थिति के कारण उत्पन्न होते हैं। अतः बाह्य जगत के द्वन्दों से छुटकारा पाने के लिए भी हमारे आंतरिक द्वन्दों का समाधान जरूरी है।

क्रियाकलाप :

निम्नलिखित प्रकरण को पढ़ें और विचार करें कि उसमें कब–कब प्रकृति–मनुष्य, सामाजिक समुदायों और व्यक्तित्व के द्वन्द उत्पन्न हुए। अपने विचार लिखें।

दिलीप का परिवार दलित समुदाय का परिवार है। अपने गाँव के दबंगों के उत्पीड़न से त्रस्त होकर उन्हें अपना गाँव छोड़ना पड़ा, क्योंकि झूठे मुकदमों, गुण्डागर्दी के बीच उनका गाँव में रहना सम्भव नहीं था। गाँव से दूर जंगल में कुछ झाड़ काटकर वहाँ झोपड़ी बनाकर रहने लगेऔरआस–पास मजदूरी कर जीवन–यापन करने लगे। बहुत कष्टों बीच दिलीप ने पढ़ाई की और उच्च प्रशासनिक पद पर पहुँच गया। एक बार उसके सामने उसके गाँव का दबंग अपराधी की तरह पेश किया गया। दिलीप को लगा कि वह उसे कठोरतम सजा दे, लेकिन उसने उतनी ही सजा दी, जितनी सजा का प्रावधान कानून में था।

स्वयं के अंदर के द्वंद्व और कुंठाएँ

दस वर्षीय रानी ; एक प्रतिष्ठित अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ती थी। अचानक उसमें परिवर्तन आना शुरू हो गया। उसने बदतमीजियां शुरू कर दीं। वह अपने सहपाठियों की कलमें चुराती और टिफिन बॉक्स तोड़ देती। शिक्षिका ने वे इस पर उसे जमकर डांट पिलाई। रानी घर लौटी। उसने अपने पर केरोसिन छिड़क कर आग लगा ली। उसे 50 फईसदी जलने के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया। कुछ दिनों तक वह मौत से जूझती रही आखिरकार उसने के दम तोड़ दिया।

उसके स्तब्ध माता–पिता बोले, हम कहां गलत थे? रानी ने हम में वैयक्तिक और सामूहिक अपराध की भावना को जागृत किया। हम जानते हैं, हमने व्यवस्थाओं की ऐसी कड़ी तैयार की थी जिसमें बच्चों की मासूमियत की अनदेखी हो रही है। क्या रानी हिंसक माहौल में बड़ी हो रही थी? उसमें आक्रामकता के शुरुआती संकेतों को क्या स्कूल को कुछ अलग दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए था? देश भर के विद्यालय शैक्षिक लक्ष्यों को लेकर चल रहे हैं और चारित्रिक लक्ष्य की अनदेखी कर रहे हैं। कई बच्चे न तो स्वयं प्रसन्न रहते हैं, न ही दूसरों को प्यार करते हैं। विभिन्न प्रकार की क्रूरता हर जगह और बढ़ते स्तर पर देखी जा सकती है। जैसे

गुंडागर्दी की हद तक चिढ़ाना, चुगलखोरी, अशालीनता, अभद्र भाषा का प्रयोग और चोरी। रानी सरीखी त्रासदियां हमें इस बात के लिए सतर्क करती हैं कि हम बच्चों के नैतिक विकास की अनदेखी कर रहे हैं।

(एनसीएफ2005 के शांति के लिए शिक्षा आधार पत्र से)

7.2 अंतर्द्वन्दों के प्रकार :

द्वंदों को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है जो निम्नानुसार है :–

1. लक्ष्यों की टकराहट से उत्पन्न द्वंद : जब एक ही व्यक्ति के सामने दो लक्ष्य हों और वो दोनों को एक साथ पाना हो, लेकिन दोनों लक्ष्य विपरीत दिशा की ओर ले जाने वाले हों, तब इस तरह का द्वन्द उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी को कल परीक्षा देने के लिए पढ़ाई करनी है और आज ही उसे दोस्तों के साथ एक सिनेमा भी देखना है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी तय नहीं कर पाता है कि वो किस ओर जाए। यही उसकी द्वंद की मनःस्थिति है।

2. लक्ष्य को छोड़ने का द्वन्द : जब किसी लक्ष्य को प्राप्त करने में हिचकिचाहट का अनुभव हो तब इसमें द्वंद उत्पन्न होता है, जिसका अनुभव हमें प्रसन्नता नहीं देता। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी को कक्षा के एक अन्य विद्यार्थी से किसी प्रश्न का उत्तर लेना है, लेकिन उस विद्यार्थी के अहंकारी स्वभाव के कारण उससे उत्तर पुस्तिका लेने में उसे हिचकिचाहट हो रही हो, तो ऐसी स्थिति बनती है।

3. लक्ष्यों को छोड़ने का द्वंद : मान लीजिए एक विद्यार्थी के सारे दोस्त उसे पिकनिक पर ले जाना चाहते हैं। लेकिन उसका मन पिकनिक जाने का नहीं है और साथ ही मना करके वह अपने दोस्तों को दुःखी भी नहीं करना चाहता। ऐसी स्थिति में वह पिकनिक जाना और न जाना के बीच द्वंद की स्थिति में होता हे।

गतिविधि :

अपने शाला जीवन से ऐसे तीन प्रकरण लाए, जिनमें उपर्युक्त तीन प्रकार के द्वन्दों का उदाहरण स्पष्ट होकर सामने आए।

7.3 द्वन्दों का समाधान :

द्वन्दों के समाधान के लिए सबसे पहले द्वन्दों के विश्लेषण की आवश्यकता होती है। द्वन्दों का विश्लेषण निम्न आधार पर किया जा सकता है।

1. द्वन्द का प्रकार क्या है– द्वन्द प्रकृति और मनुष्य के बीच किसी असंगति से उत्पन्न है, मनुष्य की सामाजिक स्थिति के कारण उत्पन्न है या व्यक्ति के स्वयं की असमंजस्य की स्थिति से उत्पन्न है।

2. द्वन्द की अवस्था– द्वन्द कितना सक्रिय और प्रबल है। तनाव और उत्तेजना कितना तीव्र है। इस तरह के विश्लेषण से द्वन्द की जिन स्थितियों का विश्लेषण करते हैं वे निम्नानुसार है :–

- द्वन्द पूर्व की स्थिति– वह स्थिति जिसमें कोई असंगति उत्पन्न होती है।
- टकराहट की स्थिति– दो विरोधी पक्ष जब आपस में टकराने लगते हैं।
- संकट की स्थिति– टकराहट जब इतनी तीव्र हो जाए कि संकट उत्पन्न हो।
- समाधान की स्थिति– स्थिति विस्फोटक और हिंसक न हो जाए, इसके लिए आवश्यक उपाय करने की अवस्था।

3. समय– द्वन्द क्रमशः तीव्र होता है। इसलिए द्वन्द को समय के परिप्रेक्ष्य में देखने पर पता चलता है कि द्वन्द किस समय कैसे उत्पन्न हुआ, फिर किन कारणों से तीव्र हुआ। कौन सी घटनाओं ने कब–कब द्वन्द की अवस्था को प्रबल किया। इस तरह यदि द्वन्द की एक समयरेखा बनाई जाए तो द्वन्द को सुलझाने में सहूलियत होती है।

4. द्वन्द का मानचित्रण– जिस तरह हम अवधारणाओं का मानचित्रण करते हैं। उसी तरह हम द्वन्द में लिप्त पक्षों को उनके रूचि, पसंद, आपसी सम्बन्ध, अनबन के कारण तथा सम्बन्ध की उग्रता के आधार पर मानचित्रण कर, विश्लेषण करते हैं।

5. यहाँ हम दो अध्यापक और एक छात्र के बीच मानचित्रण को करके देखते हैं।

छात्र 'अ' को गणित से ज्यादा भाषा अधिक प्रिय हैं उसे पाठ्येतर गतिविधियों में बहुत रूचि हैं वह शालीन किन्तु भावुक है। उसके भाषा के अध्यापक उसे बहुत चाहते हैं और हमेशा उसे प्रोत्साहित करते हैं, लेकिन उसके गणित के अध्यापक उसे गणित में कमजोरी के कारण टोकते रहते हैं। उसके माता–पिता भी चाहते हैं कि वह गणित विषय पर ध्यान दे और पाठ्येतर गतिविधियों में भाग लेना कम करे। छः माही की परीक्षा में यह छात्र अनुत्तीर्ण हो जाता है।

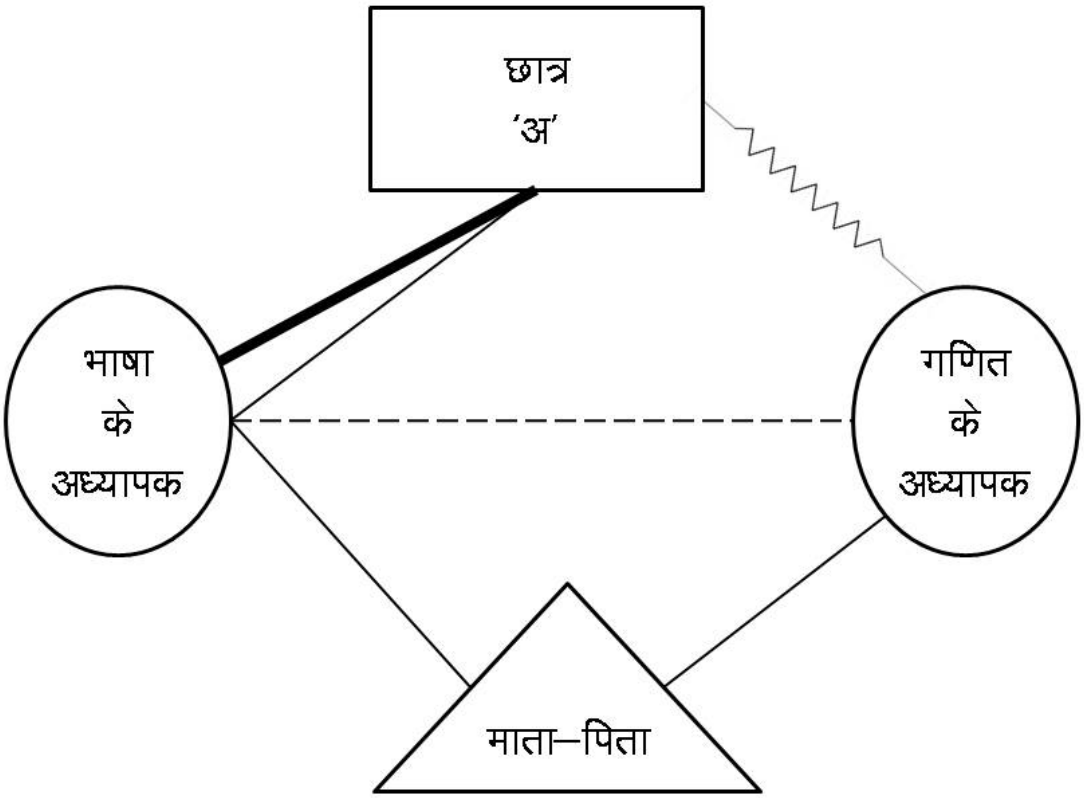

दृढ़ रूचि और पसंद

स्नेह और भावुकता के सम्बन्ध

पेशेवर सम्बन्ध

अनबन

उपर्युक्त मानचित्र से स्पष्ट है कि भाषा के शिक्षक और माता–पिता के प्रयासों से छात्र 'अ' जिस द्वन्द की मानसिक स्थिति से गुजर रहा है, उससे छुटकारा पा सकता है।

7.4 द्वन्दों का निराकरण :

द्वन्द का निराकरण उसके कारणों की पहचान के साथ सम्भव है। द्वन्द तभी समाधान की ओर जा सकता है, जब सभी पक्ष अपने उद्देश्यों, विचारों और मतों के बारे में आपस में सक्रिय रूप से संयमित रहकर बातचीत करें। यह बातचीत किसी तटस्थ मध्यस्थ व्यक्ति द्वारा हो तो ज्यादा कारगर होता हैं अतः सामूहिक बातचीत और सक्रिय ढंग से अपने मतों का आदान–प्रदान करने से ही द्वंद का शांतिपूर्ण समाधान सम्भव है। ऐसा करते हुए हम द्वन्द के कारणों की पहचान करते हैं। कारणों की पहचान करने पर ही हम उनको दूर करने के प्रयास कर पायेंगे।

द्वन्द के निराकरण के लिए निम्नलिखित गुण परंस्पर विरोधी व्यक्तियों में होना चाहिए। यदि नहीं है तो उन्हें बातचीत के द्वारा विकसित करने के प्रयास किए जाने चाहिए–

- नए विचारों व मतों को समझने की क्षमता।

- तर्कशील चिंतन की क्षमता।
- वास्तविक और काल्पनिक संकट में अन्तर कर पाना।
- परिप्रेक्ष्यों को स्पष्ट से समझ पाने की क्षमता।
- द्वन्द के मुद्दे के विभिन्न पक्ष और परिप्रेक्ष्य को समझ पाना।
- अपनी धारणाओं, मान्यताओं, मतों और विचारों की समीक्षा कर पाना और उन्हें बदलने के लिए तैयार रहना।

गतिविधि :–

एक परिवार में बहन सीरियल देखना चाहती है। दूसरी बहन क्रिकेट मैच देखना चाहती है। दादी को प्रवचन देखना है और दादाजी को समाचार। पिता चाहते हैं कुछ देर टी.वी. बंद रहे और बच्चे पढ़ें। उनकी माँ कुछ कह नहीं रही है, परन्तु फिल्म देखना चाहती है। पूरे घर में वाद–विवाद हो रहा है।

आप इस स्थिति पर –

- द्वन्द के कारण ढूंढें।
- द्वन्द का मानचित्रण करें।
- निराकरण का रास्ता सुझाएँ।

बोध प्रश्न :–

I. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखें :–

1. आपके सामने आए किसी द्वन्द की स्थिति का विश्लेषण आप कैसे करेंगे? उदाहरण देकर समझाइए।
2. किसी ऐसे द्वन्द का उदाहरण दीजिए जो हिंसक हो सकता है?
3. एक ऐसे द्वन्द का उदाहरण दें जो आपकी कक्षा में उत्पन्न हो सकता हैं ऐसे में आप कौनी सी कार्यनीति अपनाएँगे?
4. द्वन्द के कारणों को हम कैसे पहचान सकते हैं?
5. द्वन्द के निराकरण के लिए क्या करना चाहिए?

II. कोष्ठक में दिए गए शब्दों से खाली स्थान भरो –

1. पेड़ों को काटने से मनुष्य और ..... के बीच द्वन्द उत्पन्न होता है।
2. सामाजिक क्षेत्र में द्वन्द मुख्यतः ..... से उत्पन्न होता है।
3. ..... के अंदर उत्पन्न द्वन्द हमारे अंतर्द्वन्द का कारण है।
4. एकाधिक लक्ष्यों की ..... से द्वन्द उत्पन्न होता है।

5. द्वन्द के निराकरण के लिए जरूरी है कि हमें अपने ..... को बदलने के लिए तैयार रहें।

6. ..... चिंतन की क्षमता द्वन्द निराकरण के लिए जरूरी है।

(विचारों, टकराहट, व्यक्तित्व, प्रकृति, दमन, तर्कशील)

हमने जाना

- द्वंद को दो क्षेत्रों में देखा जा सकता है। एक तो प्राकृतिक और सामाजिक क्षेत्र में द्वन्द ओर दूसरा एक व्यक्ति के स्वयं का अन्तर्द्वन्द।
- सामाजिक क्षेत्र में द्वन्द दमन या उत्पीड़न के ज़रिए उत्पन्न होता है।
- अंतर्द्वन्द हमारे विवेक और तर्कपूर्ण चिंतन के साथ हमारी भावनाओं और संवेगों के टकराहट की वजह से पैदा होता है।
- द्वन्दों के समाधान के लिए सबसे पहले द्वन्दों के विश्लेषण की आवश्यकता होती है।
- द्वन्द का निराकरण उसके कारणों की पहचान के साथ सम्भव है। द्वन्द तभी समाधान की ओर जा सकता है, जब सभी पक्ष अपने उद्देश्यों, विचारों और मतों के बारे में आपस में सक्रिय रूप से संयमित रहकर बातचीत करें।

डीएलएड, पेपर 4– स्वयं की पहचान इकाई 1– स्वयं की क्षमता

अध्याय 8 आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी लेखन

8.01 परिचय

8.02 उद्देश्य

8.1 आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी का स्वरुप

8.2 अध्ययन सामग्री 1: जूलिया वेबर गार्डनर की डायरी के अंश

8.3 अध्ययन सामग्री 2: मनोहर चमेली 'मनु' की डायरी के अंश

8.4 अध्ययन सामग्री 3: जॉन होल्ट की शिक्षण डायरी के अंश

8.01 परिचय

अपने कार्य को करते हुए शिक्षकों को कई प्रकार के अच्छे–बुरे अनुभव होते है। ये अनुभव उन्हें अन्य शिक्षकों, विद्यार्थियों, अभिभावकों और समाज के सम्पर्क में प्राप्त होता है। लेकिन अपने अनुभवों को पहचानना एक कठिन कार्य है। अनुभव किस तरह हमारे शिक्षण कार्य को प्रभावित कर रहे है, उनका बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि से क्या संबंध है, आगे के हमारे कार्य उससे प्रेरित हो रहे ह या नहीं – ये जानना हमारे लिए जरुरी है। अर्थात हमारे अनुभव की उपयोगिता, आवश्यकता और महत्त्व का पता हमें होना चाहिए क्योकि ऐसा हुए ही हम अपने कार्य की गुणवत्ता को बढ़ा सकेंगे। यहाँ ध्यान रखना है कि अनुभव प्राप्त करते रहना ही पर्याप्त नहीं होता।हमें अपने अनुभवों पर सोचना और विचार करना भी चाहिए क्योंकि तभी हम अपने अनुभवों के स्वरुप को पहचान सकेगे। अनुभवों पर बार–बार लौटकर उन पर सोचना जरुरी है, तभी हम अनुभवों को कारगर ढंग से भविष्य के कार्य के लिए इस्तेमाल कर सकेंगे। अनुभवों को साझा करने से भी हम अपने अनुभवों को और अधिक समृद्ध कर सकते है। इसीलिए अनुभवों को लिखना चाहिए।

बहुत से शिक्षकों और शिक्षाविदों ने समय–समय पर दैनंदिनी लिखे है जिनका उपयोग हम शिक्षा की समझ, शैक्षणिक गतिविधि के निर्धारण, कक्षा के स्वरुप जैसे विषयों पर हमारा मार्गदर्शन करते है। गिजुभाई का 'दिवास्वप्न' उनके अध्यापकीय जीवन के अनुभवों का कथात्मक निचोड़ है।इसी प्रकार तेत्सुको कुरोयानागी ने जापानी भाषा में 'तोत्तोचान' लिखी। जॉन होल्ट, टैगोर, अरविन्द, गाँधीजी, जूलिया बेवर गार्डन ने भी अपने अनुभवों को लिखा और उससे अनेक शिक्षक प्रभावित व प्रेरित हुए।

हमें भी कोशिश करनी चाहिए कि हम अपने अनुभवों को लिखे और उसे अपने साथियों के साथ साझा करें। इससे हमारे ज्ञान और सृजनशीलता का विकास होगा। हमारी शाला के वातावरण भी शैक्षिक दृष्टि से समृद्ध होगा, अंततः इसका बेहतर प्रभाव शिक्षा की गुणवत्ता पर पड़ता है।

इस इकाई में आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी लेखन के कुछ नमूनों के आधार पर हम देखेंगे कि आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी लिखे कैसे जाते है।

8.02 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन से आप

- आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी लेखन के स्वरुप के बारे में जानेंगे।
- अपने अनुभवों को लिखना सीखेंगे।
- विचारशील चिंतन करना जानेंगे।

8.1 आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी का स्वरुप

आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी का कोई निर्धारित स्वरुप नहीं है। पत्र, शोध, प्रतिवेदन आदि की तरह इसमें कोई प्रारुप नहीं होते है। अतः प्रति दिन पढ़ाए जाने की पाठ योजना को हम आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी नहीं कह सकते है। इस तरह की दैनंदिनी में हम अपने किये गये कार्यों की समीक्षा करते है।इस प्रकार हम अपने कार्यों की सफलता का आकलन करते है और आगे के कार्यो का निर्धारण करते है।

हर शिक्षक की क्षमता, योग्यता, अनुभव, कल्पनाशक्ति से शिक्षण विधि या उसकी शैक्षिक दृष्टि का निर्माण होता है।इसीलिए कक्षा शिक्षण में विभिन्न प्रकार के अनुभवो का समावेश होता है। ऐसे में शिक्षकों की बारीक से बारीक गतिविधि यदि दस्तावेजी रूप में अंकित हो जाए तो शिक्षा के विकास में अत्यंत उपयोगी होगी। आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी लेखन से शिक्षक अपने समय का शैक्षिक इतिहास भी रचते है। अतः उनकी लिखी हुई दैनंदिनी बाद में भी अन्य शिक्षकों और शिक्षा से जुड़े हुए लोगों को प्रेरणा और दिशा देती है।

गतिविधि 1

कल्पना करें कि आपकी शाला के बच्चों के साथ आप भ्रमण पर गये । वहाँ बच्चों ने नदी देखी। विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधे देखे। एक पुरानी हवेली देखी। आपने उनके साथ विस्तार से बातचीत की। इस पर आप एक विस्तृत विवरण लिखें कि बच्चों को आपने कैसे क्षेत्र का भ्रमण कराया, उन्होने अपासे क्या प्रश्न किये, आपने उनकी जिज्ञासाओं को कैसे शांत किया। यह भी लिखें कि बच्चों ने इस भ्रमण से क्या सीखा।

8.2 अध्ययन सामग्री 1

नीचे **जूलिया वेबर गार्डनर** की डायरी के कुछ अंश दिये गये है। इन अंशो को पढ़कर दिये गये प्रश्नों का उत्तर लिखें।

बच्चों ने प्रगति की

सोमवार, 2 नवम्बर

नया माह हम सब के लिए भी नई शुरूआत लाता है। हमने महीने का स्वागत बढ़िया साफ–सफाई से किया। बच्चों ने अपनी मेजों को झाड़–पोंछकर चमकाया, इकट्ठे हुए रद्दी कागजों की छँटनी की और अपनी किताबों, कॉपियों और उपकरणों को तरतीब से रखा। इससे हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली। "तो हम अलमारियॉ भी क्यों नहीं साफ कर देते?" आधा दर्जन बच्चों ने एक साथ पूछा। पता नहीं क्यों, उन्हें अलमारियॉ साफ करने में मजा आता है। पर इसके बाद भी सफाई से उनका मन नहीं भरा। रूथ को लगा कि हमें लगे हाथ रसोई के आलों को भी साफ कर डालना चाहिए ताकि जब गर्म भोजन का कार्यक्रम शुरू हो तो सब व्यवस्थित हो। फ्रैंक ने ऐन खॉटी परिपाटी के अनुसार रकड़–रगड़कर टॉडें धोईं, वॉरेन ने उन्हें पूरी तरह सुखाया तथा एना और रूथ ने कपों पर बच्चों के नाम लिखकर नए लेबल चिपकाए। तब उन्होंने सारी थालियॉ, भगोने–पतीले, चावल–आटा आदि रखने के डिब्बे उबालकर धोए और उनहें पोंछकर आलों में सजा दिया। जब हम यह सब कर चुके तो वॉरेन और फ्रैंक ने जोर देकर कहा कि इन सर्दियों के दौरान वे ही रसोइए रहेंगे।

आज हमने जो कुछ किया वॉरेन उसे "कठिन खेल" कहता है। सफाई में पूरा दिन निकल गया, पर अब हमारा कमरा सफाई से महक और दमक रहा है। साफ कक्षा और आकर्षक खेल मैदान पर जोर देने के कारण बच्चे भी अब कुछ ज्यादा साफ दिखने लगे हैं।

बुधवार, 4 नवम्बर

बच्चों की शब्दावली हौले–हौले बढ़ रही है। हम नए शब्दों का मजा उठा रहे हैं, हर अवसर पर उनका प्रयोग करते हैं। उनका ताजा सीखा शब्द है "बेतुका"। हम पढ़ने, लिखने और गणित में फिलहाल

ज्यादा समय लगा रहे हैं क्योंकि सबसे अधिक मदद बच्चों को इन्हीं में चाहिए। इन विषयों में दक्षता केवल इसलिए आवश्यक नहीं है कि वे जीवन के लिए उपयोगी हैं बल्कि इसलिए भी कि इनमें लगातार असफलता पाने से बच्चों में भावनात्मक समस्याएँ उपजती हैं। वॉरेन इसका उम्दा उदाहरण है। जब से गणित और वर्तनी में सुधार से उसे कुछ सन्तोष मिला है, वह समूह में अधिक सहज महसूस करने लगा है। पटन के लिए मैं शिक्षक मार्गदर्शिका का अनुसरण करती हूँ, क्योंकि पठन विशेषज्ञ मुझसे बेहतर यह समझते होंगे कि बच्चे दरअसल पढ़ना कैसे सीखते हैं और कौन सी कहानी से किस उद्देश्य की प्राप्ति में मदद मिलती है। पर मैं फिर भी अपने हिसाब से कई तबदीलियाँ करती हूँ क्योंकि अपनी कक्षा की स्थिति को और इन लड़कियों और लड़कों को मैं किसी भी पठन विशेषज्ञ से बेहतर जानती हूँ।

हमारी शाला में गणित, वर्तनी, भाषा और लेखन व्यक्तिगत मसले हैं। प्रत्येक बच्चे की अपनी कॉपी है जिसमें उसकी जरूरतें दर्ज हैं। मैं कोशिश कर रही हूँ कि प्रत्येक को उसकी निजी आवश्यकताओं का एहसास हो और उनमें सुधार की इच्छा मजबूत होती जाए। बच्चों के साथ व्यक्तिगत बैठकें इस मामले में कारगर सिद्ध होती हैं।

कुछ समय पहले तक दोपहर का अभ्यास पीरियड तीन घेरों वाले सर्कस–सा लगता था। बच्चे खुद ईमानदारी के साथ कोशिश करने से पहले ही मेरे पास भागे आते थे। मैं बारी–बारी छोटे समूहों में बच्चों के साथ बैठी और उनका परिचय गणित की पाठ्यपुस्तकों से करवाया। उन्हें समझाया कि हर नए काम के पहले पाठ में गणित की क्रिया के प्रत्येक चरण को सिलसिलेवार समझाया गया है। इन स्पष्टीकरणों का उपयोग कैसे किया जा सकता है, यह मैंने उन्हें क्रमशः दिखाया। अब उनका ध्यान सही जवाब पाने से हटकर समरूा को समझने पर केन्द्रित होने लगा है। रूथ आज बोली, "जवाब तोसही आ गया, पर मुझे समझ नहीं आया कि वह सही क्यों है।"

अब क्योंकि बच्चे स्वतंत्र रूप से काम करने लगे हैं, मैं हर दिन बच्चों के साथ व्यक्तिगत बैठकों के लिए समय निकल पाती हूँ। आज मैंने रूथ की कॉपियाँ सावधानी से देखीं। ज्यादातर काम लापरवाही के साथ किया हुआ था। अगले एक माह तक रूथ अपने लिखे हुए को फिर से पढ़ेगी और अगर गलतियाँ नजर आएँ तो उन्हें सुधारेगी। इससे पहले वह काम खत्म हो गया है, ऐसा नहीं मान लेगी। हमने लोगों के प्रति उसके दृष्टिकोण पर भी बात की, खासकर समुदाय के उन वयस्कों के प्रति जिन्हें वह जानती है। मैंने समझाया कि हम जानते हैं कि वह किसी का अपमान नहीं करना चाहती, पर यह आदत अच्छी नहीं है।

सोमवार, 5 अक्टूबर

आज मैंने ओल्गा के साथ बैठक की। यह किसी अकेले बच्चे के साथ मेरी पहली नियमित बैठक थी। यद्यपि मैं जरूरत पड़ने पर किसी भी बच्चे के साथ अकेले बातचीत करती हूँ, पर अब तय किया है कि मैं प्रत्येक बच्चे के साथ माह में कम–से–कम एक बार नियमित बैठक करूँगी। इस बैठक में हम उसके काम का साझा आकलन कर सकते हैं और आगामी माह मेंउसमें सुधार की योजना बना सकते हैं। उम्मीद है कि मैं उन्हें अपने बारे में बात करने की प्रेरणा दे सकूँगी ताकि वे मुझे बताएँ कि उन्हें क्या पसन्द है और क्या पसन्द नहीं है, उनकी महत्वाकांक्षाएँ और दुष्चिन्ताएँ क्या हैं और उन्हें किन चीजों में मजा आता है। इसके अलावा भी वे जो कुछ भी मुझसे कहना चाहें कह सकेंगे। ओल्गा बेहद शर्माई हुई थी और "हॉ" और "ना" से ज्यादा बोल नहीं पाई। उसकी कॉपियाँ बड़ी तरतीब से व्यवस्थित थीं और उसका काम पूरा था। मैंने उसकी मेहनत की प्रशंसा की तो वह शर्माकार मुस्कुराई। मैंने पूछा कि वह अगले महीने क्या करना चाहती है। उसे पता नहीं था। मैंने सुझाया कि वह पुस्तकालय के पीरियड के लिए एक अच्छी–सी रपट तैयार करे।

बुधवार, 7 अक्टूबर

शारीरिक शिक्षा के पीरियड में गजब की बहसबाजी चलती है! जैसे ही एक टीम हारने लगती है, उसके सदस्य दूसरी टीम पर चालबाजी का आरोप लगाते हैं। बड़े बच्चों ने छोटे बच्चों के साथ मेरे खेल में दो बार रूकावट डाली और अन्ततः मुझे कहना पड़ा, "अगर हम इकट्ठे खेल ही नहीं सकते तो शायद हमें खेलना ही नहीं चाहिए।" जब हम अन्दर लौटे तो मैंने उन्हें यह गौर करने को कहा कि वे सब बिना

सोचे–समझे कही और की गई बातों से कितने दुःखी हैं। उन्हें लगता है कि खेल के स्कोर ही सबसे महत्वपूर्ण हैं, पर असल में खेलने के आनन्द का कहीं अधिक महत्व है। मन में भरे गुस्से और ऐंठन के चलते शारीरिक अभ्यास ने भला क्या लाभ पहुँचाया होगा?

उपर्युक्त डायरी को पढ़कर कोई पाँच कारण बताए कि जूलिया बेवर गार्डनर के अनुभव किस प्रकार आपके लिए भी उपयोगी हो सकता है।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

8.3 अध्ययन सामग्री 2

मनोहर चमेली 'मनु' की डायरी के अंश

मनोहर चमोली 'मनु' उत्तराखण्ड के एक युवा शिक्षक हैं। वे डायरी लिखते रहे हैं। वे इन दिनों राजकीय हाई स्कूल भितांई, पौड़ी, पौड़ी गढ़वाल 246001 उत्तराखण्ड में शिक्षक हैं। उनकी डायरीके पन्ने उनके परिवेश, उनके स्कूल, उनके विद्यार्थियों, उनके साथियों और उनके शैक्षिक अनुभव के बारे में बहुत कुछ कहते हैं।मनोहर चमोली के डायरी के नीचे दिये गए अंशों को पढ़कर बाद में दिए गए प्रश्नों का उत्तर लिखें।

7 / जनवरी / 2006

मैं पढ़ा रहा था। बच्चे कुछ छिपा रहे थे। मैंने कॉपी–किताबों की तलाशी ली। मैंने एक बालिका की किताब से रंगीन अखबार निकाला। उलट–पलट कर देखा तो पंजाब केसरी था। अखबार में मेरी कविता नलई के पते के साथ छपी थी। बच्चे संकोचवश मुझे नहीं बता पाए। पूछा तो पता चला कि सब बच्चों ने वह कविता पढ़ ली है। कुछ ने अपनी कॉपी पर उतार ली है। हैरान था कि गाँव में भी एक ऐसा अखबार जो स्थानीय नहीं है उसे पढ़ा जाता है। लेखन आपको बहुत मशहूर करता है। बच्चों को अखबार में मेरी कविता, मेरा नाम और विद्यालय का नाम देखकर हैरानी हुई। जैसे बहुत बड़ा काम हुआ हो। विद्यालय में एक बालिका है। पोलियो की वजह से उसका एक पैर खराब है। बालिका बेहद भावुक है। लिखावट भी औरों से बहुत अच्छी है। जूनियर के बाद वो परसुंडाखाल पढ़ने नहीं गई। यही कारण है कि वो सभी बच्चों में बड़ी है। अब ये स्कूल हाई स्कूल हो गया है, तो उसने यहाँ प्रवेश ले लिया है। वह पढ़ना चाहती है। मगर लगता है कि उसमें यह हीन भावना है कि वह कमजोर है। मैं उसे भी और पूरी कक्षा को समझाता हूँ कि मन से कमजोर नहीं होना चाहिए। शरीर के अपंग होने से भी बहुत कुछ किया जा सकता है। मैंने उसे समझाया कि पढ़ना है। खूब पढ़ना है। डिग्री कॉलेज पौड़ी तक जाना है। वो कुछ करेगी। मुझे ऐसा लगता है।

11 / जनवरी / 2006

बच्चे आज फिर कुछ छिपा रहे थे। मुझे पता नहीं क्या सूझा। मैंने बच्चों के बैग चौक करने शुरू कर दिए । कुछ बच्चों के बैग में से रुपए, खाने की चीजें , एक बालिका के बैग से गुलेल भी निकली।

बिंदी, कान की बालियाँ, नाक की लौंग आदि, घर परिवार के सदस्यों की रंगीन फोटो भी बच्चों ने अपने बैग में रखी थीं। इस बहाने बच्चों के पूरे बस्ते की जाँच हुई। बच्चों को बताया कि वे अपनी कॉपी–किताबों का रख–रखाव ठीक से रखे। एक बालिका का बस्ता साफ–सुथरा था। कॉपी–किताबें जिल्द से सजी थीं। मैंने उसे पुरस्कार स्वरूप एक पैन दिया। लड़कों की कॉपियों के पीछे कुछ शेर लिखे थे। लड़कों के बैग में कुछ विशेष नहीं निकला। एक छात्र ने माचिस की डिबिया को ताश के पत्ते के रूप में इकट्ठा किया हुआ है। मैंने उन्हें डाक टिकटों के संग्रह और रुपए–पैसों के संग्रह की जानकारी दी। इस बात पर जब मैंने एक शिक्षिका से चर्चा की तो उन्होंने कहा कि यूँ अचानक बच्चों के खासकर लड़कियों के बस्ते चौक नहीं करने चाहिए।

16 / जनवरी / 2006

दो–तीन दिन पहले की बात है। बच्चों ने काम नहीं किया। एक शिक्षक भड़क गए। पूरी कक्षा को खड़ा कर दिया। कुछ ही बच्चे थे जिन्होंने काम किया हुआ था। उन्हें बैठ जाने को कहा गया। बड़े बच्चे से कण्डाली (एक प्रकार का घास जिसे बिच्छू घास भी कहा जाता है। उसके पत्तों पर कई डंकनुमा तंतु होते हैं, जिसे छूने पर वह शरीर पर चिपक जाते हैं। छुए हुए अंग पर कई घण्टों तक तीखी झनझनाहट बनी रहती है, कई बार तो फफोले भी बन जाते हैं) मँगाई गई। बच्चों के हाथों पर और पैरों में कण्डाली से मारा गया। मेरे तो सारे शरीर में झनझनाहट फैल गई। बचपन में यदा–कदा पिताजी भी इस घास का प्रयोग हमें सजा देने के तौर पर करते थे। ये तो उत्पीड़न है। मगर इस क्षेत्र में अधिकांशतः यह स्वीकार्य है। अभिभावक भी जानते हैं। पूछा तो पता चला कि यह दण्ड इतना भारी नहीं है। मुर्गा बनाकर कमर पर ईंट–पत्थर रखना, स्टूल पर एक टाँग से खड़ाकर रखना, धूप में खड़ा करना आदि कई सजाएँ हैं, जो नन्हें–मुन्ने बालकों से लेकर छात्राओं तक को दी जाती हैं। मैं अभी तो कुछ नहीं कह पाया हूँ, पर इसका विरोध करुँगा।

20 / जनवरी / 2005

बच्चों को अनुशासन के नाम पर डाँटना–मारना समस्या का समाधान नहीं है। बच्चों में असीमित ऊर्जा होती है। वे चिल्लाकर, बातें कर, घूम–घूमकर अपनी भावनाएँ और दूसरों की भावनाओं का आदान–प्रदान करते हैं। यह हम बड़ों को गवारा नहीं होता। आखिर बच्चों पर चुप्पी का, मौन रहने का, खामोश रहने का, लगातार पढ़ते रहने का अनुशासन क्यों? क्या जरूरी है कि बच्चे सिर्फ मध्यांतर में ही खेलें? मध्यांतर से पहले कोई पानी पीने नहीं जाएगा, कोई लघु शंका के लिए नहीं कहेगा। ये क्या बात हुई। पता नहीं कैसे–कैसे नियम थोपे हुए हैं।

23 / जनवरी / 2005

बच्चे सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम होते हैं। उन्हें हमसे ज्यादा खबर होती है दीन–दुनिया की। वे बिना लाग–लपेट के सारी बातें यहाँ–वहाँप्रसारित कर देते हैं। हम बड़े ही उनका उपयोग नहीं कर पाते। मैं तो बच्चों को अपनी गतिविधियों में शामिल करता हूँ। बच्चों को स्कूली गतिविधियों में शामिल करना चाहिए। इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। हमें भी आसानी रहती है। मैं तो कई बार हाजिरी रजिस्टर, शुल्क आदि का कार्य भी बच्चों को सौंप देता हूँ। उन्हें एक बार समझा दीजिए। वे बड़ी सरलता और सहजता से काम करते हैं।

03 / अक्टूबर / 2006

कक्षा नौ और दस के बच्चों को मैं बालहंस, नंदन, बाल भारती, पाठक मंच बुलेटिन, विज्ञान प्रगति आदि पढ़ने के लिए देता रहा हूँ। मैंने देखा कि पत्रिकाओं को घर ले जाने का और उन्हें समूह में पढ़ने का उत्साह उनमें हैं। वे जोर–जोर से एक साथ पढ़ने की कोशिश करते हैं। पिछले दो–तीन महीनों में उनमें पढ़ने की आदत बनी है। वे कहानियों, चित्रों से अपनी समझ बनाते हैं। मात्राओं की सही पहचान और सही पढ़ने की आदत भी अच्छी हो जाती है। मगर किसी शिक्षक ने प्रिंसिपल साहब को बताया। प्रिंसिपल साहब

ने कहा, बच्चों को कहानियों की किताबें देने से क्या होगा। उनका सारा ध्यान तो बँट जाता है। मैंने कहानियों के पीछे का उद्देश्य बताया, मगर वो सहमत नहीं थे।

बच्चे किताबों के लिए फीस डे के दिन ही एक–एक रुपया जमा करते थे। कुछ रुपए मैं भी जमा करता था। इस तरह से हमारे पास 50 से अधिक किताबें हो गई थीं। मगर सब किया धरा बेकार हो गया। मैं बच्चों से यह तो नहीं कह पाया कि हम इस योजना पर काम नहीं कर सकते। मगर अब ये धीरे–धीरे बन्द हो जाएगा । कुछ किताबें गुम भी हो गईं हैं। हमारे ही शिक्षक किताबें ले गए और वापिस नहीं लाए।

बोध प्रश्न

1 शिक्षक ने लिखा कि पोलियो से जिस बच्चे के पैर खराब है वो भावुक और हीन भावना से ग्रस्त है। ऐसा शिक्षक को क्यों लगा?

2 बच्चों के बस्ते से क्या–क्या चीजें निकली? यहीं चीजें क्यों निकली?

3 एक शिक्षिका ने क्यों कहा कि अचानक बच्चों की, खास तौर से लड़कियों के बस्ते की इस तरह जाँच नहीं करना चाहिए।

4 बच्चों को डाँटना मारना समस्या का समाधान क्यों नहीं है?

5 शिक्षक क्यों कहते है कि बच्चे सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम होते है?

8.4 अध्ययन सामग्री 3

जॉन होल्ट की शिक्षण डायरी के कुछ अंश

फरवरी 27,1958

कुछ दिनों पहले नैल मेरी मेज तक आई और हमेशा की तरह बिना बोले, अपलक देखते हुए स्याही से लिखा अपना ताजा आलेख मेज पर रखा। हमारा नियम है कि स्याही से जब कभी कोई चीज उतारी जाए तो एक पन्ने पर तीन से अधिक गल्तियाँ नही होनी चाहिए। अगर हों तो पन्ना फिर से उतारना होगा। उसके पहले पन्ने को जाँचने पर मुझे पाँच गल्तियाँ मिलीं। मैंने भरसक नरमी से बताया कि उसे पन्ना फिर से उतारना होगा। जैसी शिक्षकों की वृत्ति होती है, मैंने यह भी जोड़ा कि उसे सावधानी बरतनी चाहिए थी। उसने मुझे घूरा, उसाँस छोड़ी और अपनी मेज पर लौट गई। वह बाएँ हाथ से लिखती है और कलम का सही इस्तेमाल सीख नहीं पाई है। मैं उसे एकाग्र होकर काम से जूझता देख रहा था। कुछ देर बाद वह दूसरी बार लिखकर लाई किन्तु उसे फिर उतारना होगा। कुछ देर बाद तीसरी प्रति भी आई जो दूसरी से भी बदतर थी ।

ठीक उसी समय बिल हल ने मुझसे एक सवाल किया जो मुझे खुद से करना चाहिए था , जो सभी शिक्षकों को हमेशा अपने–आप से पूछना चाहिए , ''तुम कहाँ पहुँचना चाह रहे हो, तुम क्या वहाँ पहुँच रहे हो ?''

यह सवाल मुँह बाए स्कूलों में खड़ा होता है, पर कौन–सी ऐसी जगह है जहाँ इसका सामना नहीं करना पड़ता ? हम कितनी आसानी से फिर–फिर उसी फन्दे में फँसते हैं । लक्ष्य के लिए जो

साधन हैं, वही लक्ष्य बनकर रह जाते हैं । मेरे पास तीन गलतियों वाला यह नियम था जो बच्चों को एकाग्रता के साथ, सफाई के साथ, लेख लिखवाने का साधन मात्र था । उसे सख्ती से लागू कर मुझे तो एक ऐसी बच्ची मिल रही थी जिसे लेख उतारने की इतनी चिन्ता थी कि उसके लिए ध्यान केन्द्रित करना ही असम्भव बनता जा रहा था, जिसका काम बंद से बदतर होता जा रहा था । मुझे तो एक ऐसी बच्ची मिल रही थी जो अपना हर अगला पन्ना अपने हर पिछले पन्ने से अधिक खराब लिखने वाली थी ।

जो कुछ हम स्कूलों में करें उसके बारे में यह पूछते जाना चाहिए, '' हम पहुँचना कहाँ चाह रहें हैं और जो हम कह रहे हैं क्या उससे हमें वहाँ पहुंचने में मदद मिल रही है?'' जब हम कुछ करते हैं क्या वह इसलिए नहीं करते कि हमें बच्चों की सहायता मिल रही है । या फिर हम वह इसलिए करते हैं कि वही स्कूल को, शिक्षकों या व्यवस्थापकों को किफायती और सुविधाजनक लगता है। या फिर इसलिए कि दूसरे भी ठीक ऐसा ही करते हैं। हमें सजग रहना चाहिए कि हम अपनी सुविधा को ही एक मूल्य का दर्जा न दे डालें । न ही हमें व्यवस्थात्मक किफायत की वजह से अपनाए गए नियमों को उच्च शैक्षिक स्तर का जामा पहनाना चाहिए । इससे खतरनाक होगा किसी अच्छे कारण से शुरू की गई गतिविधि को हठ व अन्धेपन के साथ करते चले जाना और यही मैं उस दिन कर रहा था । या तो मैं यह देख ही नहीं पा रहा था या देखना चाहता ही नहीं था कि मैं बच्ची को फायदा नहीं, नुकसान पहुँचा रहा हूँ ।

यह मेरा सहकर्मी बिल हल उस स्कूल में आया, जहाँ हम दोनों ने बाद में साथ–साथ पाँचवी कक्षा को पढ़ाया, तो वह गणित विभागाध्यक्ष के सहायक के रूप में आया था । विभागाध्यक्ष एक बुजुर्ग सज्जन थे, जिन्होंने ताउम्र गणित पढ़ाया था और इस विशिष्ट, उच्च आई. क्यू. वाले बच्चों के स्कूल में भी लम्बे समय से पढ़ाते चले आ रहे थे । एक रोज़ उन्होंने बिल को अपने जीवन–भर के उपक्रम का सार–संक्षेप इन शब्दों में बताया, ''मै पढ़ाता तो हूँ ,पर वे सीखते नहीं हैं ।''

यह बात वे सभी शिक्षक जानते हैं जो अपने काम के प्रति ईमानदार हैं। यही बात मैं कॉलरेडो में पढ़ाना शुरू करने के कुछ ही दिनों में जान गया था। मैं पढ़ाता था पर वे सीखते नहीं थे। पर खराब छात्र पहले से बेहतर नहीं होते, बल्कि कुछ तो बदतर ही होते जाते थे। अगर देश–भर के ''श्रेष्ठतम'' स्कूलों का लेखा–जोखा देखें कि उनके यहाँ के कितने छात्र दूसरी या तीसरी श्रेणी से पहली श्रेणी में आए तो यह संख्या दुखदाई रूप से छोटी होगी।

जिस प्रश्न का मैं सालों से उत्तर चाहता रहा हूँ , वह यह है कि बच्चे यह सब क्यों नहीं सीखते जो हम उन्हें पढ़ाते हैं? जिस उत्तर तक मैं पहुँचा हूँ उसे यों कहा जा सकता हैः क्योंकि हम उन्हें पढ़ाते हैं, यानी उनके मन की विश्यवस्तु को नियंत्रित करना चाहते हैं।

अक्टूबर 30,1968

यहाँ हरेक ऐसे पेश आता है मानो कुछेक निहायत निकम्मे छात्रों को छोड़कर बाकी सभी छात्र गणित की वे सब बातें समझते हैं जो उन्हें जाननी चाहिए। यह सच नहीं है। बीस बच्चों की कक्षा में कम से कम छह छात्र ऐसे होंगे जो साधारण जोड़ नहीं जानते और इससे कहीं बड़ी संख्या उन बच्चों

की होगी जो उँगलियों पर जोड़ते हैं। हाँ , वे उन्हें छिपाकर करते हैं। इससे भी कहीं अधिक संख्या उन बच्चों की है जो गुणा या भाग नहीं कर पाते। मुझे तो यह अनुमान लगाने की चेष्टा ही डराती है कि स्थानीय मान की उनकी समझ क्या है।

गणित के एक ऐसे पर्चे को बनाना बड़ा आसान होगा जो न तो बहुत लम्बा हो, न ही बहुत टेढ़ा; जो केवल ऐसे ही सवाल पूछता हो जो इन बच्चों को आने चाहिए पर जो कुछ को छोड़ पाँचवीं कक्षा के सभी बच्चों को चक्कर में डाल दें। और पाँचवीं का ही क्यों किसी भी कक्षा का ऐसा पर्चा बनाया जा सकता है। जिस नवीं कक्षा को मैं पढ़ाता था वे सब गणित में ठीक–ठाक नम्बर पाकर ही उत्तीर्ण हुए थे, पर भाग के बारे में वे बहुत कम जानते थे, भिन्नों के बारे में उससे भी कम और दशमलव के बारे में तो प्रायः कुछ भी नहीं जानते थे।

लगता है यह जाँच – परीक्षा नम्बर –वाली पूरी व्यवस्था ही एक बड़ी साजिश है। जिसका मकसद हैं छात्रों, शिक्षकों व स्कूलों को एक सामूहिक छलाव में भाग लेने देना। यह छलाव कि छात्र सच में वह सब जानते हैं जो उन्हें जानना चाहिए। जबकि सच्चाई यह है कि वे उसका कुछ हिस्सा ही जान पाते हैं। उच्च विद्यालयों तक में शिक्षक पहले से यह क्यों बताते हैं कि परीक्षा किन अध्यायों की होगी या सवाल किस तरह के पूछे जाएँगे? इसलिए क्योंकि अगर शिक्षक ऐसा न करें तो अधिकांश बच्चे फेल हो जाएँ। हारवर्ड या येल तक में कोई प्रोफेसर अगर मार्च के महीने में उन अध्यायों की परीक्षा ले डाले जो उसने अक्टूबर में पढ़ाए थे तो क्या हो? शायद इसका नतीजा हम सब जानते हैं। इसीलिए ऐसा करते नहीं हैं।

यह बात आज भी उतनी ही सच है जितनी तब थी। चाहे हमारे परीक्षा परिणाम कुछ भी क्यों न दिखाते हों, स्कूलों में जो कुछ भी पढ़ाया जाता है उसका एक छोटा – सा अंश ही सीखा या याद रखा जाता है और जो याद रखा जाता है उसका भी एक छोटा –सा हिस्सा ही काम का होता है। हम जो कुछ सीखते, याद रखते और इस्तेमाल करते हैं वे सब वही बातें होती हैं जिन्हें हम स्कूल से बाहर की जिन्दगी में तलाशते या पाते हैं।

सही या गलत की स्थिति में फँसने पर बच्चे स्वाभाविक रूप से हर सम्भव सुराग पकड़ने की चेष्टा करते हैं। हम शिक्षकों को ऐसे सवाल उठाने होंगे, जिससे हर आलतू–फालतू इशारा उन्हें सही उत्तर तक न पहुँचा दे। हमें सीखना होगा कि कब हमारे चेहरे और दिमाग पढ़े जा रहे हैं, ताकि हम उनके संकेतों को बदल सकें। इससे भी जरूरी है बच्चों को उनकी रणनीतियों के बारे में सचेत करना। उन तरीकों के बारे में बताना होगा जिनसे वे सोचने – विचारने का अपना काम हमसे करवाते रहते हैं। किसी समस्या पर काम कर रहे बच्चों से मैं अक्सर पूछता हूँ , '' तुम मेरी ओर क्यों ताक रहे हो? उत्तर मेरे माथे पर नहीं उभरने वाला है।'' जो बच्चे ऐसा कर रहे होते हैं वे सचेत होते ही हँस पड़ते हैं। पर अच्छा होता कि मैं उनकी ओर से मुँह फेर पाता ताकि वे चेहरा देख ही नहीं पाएँ।
जब कोई बच्चा किसी अवैध तरीके से सही उत्तर पाता है और उसे जानने का श्रेय मिल जाता है जो असल में वह जानता ही नहीं, और जब वह यह भी जानता है कि वह जानता नहीं है,तो इसका दोहरा नुकसान होता है। अव्वल तो वह सीखता ही नहीं है, तो उसके भ्रम गहराते हैं। वह यह मानने लगता है कि छल–कपट, अनुमान लगाना, मन पढ़ना, इंगितों को पकड़ना व दूसरों से उत्तर पाना ही

वह बात है जो उसे स्कूल में करनी है। स्कूल इसी बारे में है। वहाँ दूसरा कुछ सम्भव ही नहीं है।

बोध प्रश्न

1. गणित विषय के अध्ययन–अध्यापन पर जॉन हॉल्ट के अनुभव क्या है?
2. बच्चों के आकलन पर जॉन हॉल्ट के अनुभव क्या है? वे क्यों कहते है कि 'जाँच – परीक्षा नम्बर –वाली पूरी व्यवस्था ही एक बड़ी साजिश है'?
3. जॉन हॉल्ट क्यों कहते है कि 'हमें सीखना होगा कि कब हमारे चेहरे और दिमाग पढ़े जा रहे हैं, ताकि हम उनके संकेतों को बदल सके'?

हमने जाना

- हमें अपने अनुभवों पर सोचना और विचार करना भी चाहिए क्योंकि तभी हम अपने अनुभवों के स्वरुप को पहचान सकेगे। अनुभवों पर बार–बार लौटकर उन पर सोचना जरुरी है, तभी हम अनुभवों को कारगर ढंग से भविष्य के कार्य के लिए इस्तेमाल कर सकेंगे। अनुभवों को साझा करने से भी हम अपने अनुभवों को और अधिक समृद्ध कर सकते है। इसीलिए अनुभवों को लिखना चाहिए।
- आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी का कोई निर्धारित स्वरुप नहीं है। पत्र, शोध, प्रतिवेदन आदि की तरह इसमें कोई प्रारुप नहीं होते है। अतः प्रति दिन पढ़ाए जाने की पाठ योजना को हम आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी नहीं कह सकते है। इस तरह की दैनंदिनी में हम अपने किये गये कार्यों की समीक्षा करते है।इस प्रकार हम अपने कार्यों की सफलता का आकलन करते है और आगे के कार्यो का निर्धारण करते है।
- हमने अध्ययन सामग्रियों में देखा कि किस प्रकार आत्मसमीक्षात्मक दैनंदिनी लिखी जाती है।